



དཔལ་ལྷན་  
ཆོས་འབྲེལ་

## दागपोका चार धर्म

स्वामी गम्पोपाद्वारा रचित दागपोका चार धर्महरूको साधारण भाषामा व्याख्या:  
हीनमति प्रवेशद्वार नाम विहरतिस्म

रचनाकार: महामहोपाध्याय ठाड्गु रिन्पोछे  
नेपाली अनुवादक: मिलन शाक्य

स्वामी गम्पोपाद्वारा रचित दाग्नोका चार धर्महरूको साधारण भाषामा व्याख्याः  
हीनमति प्रवेशद्वार नाम विहरतिस्म

༡༡། །རྩོམ་པོ་པའི་གསུང་དྲགས་པོ་ཚེས་པའི་པལ་སྐད་དུ་བསྐལ་བ་  
སྟོ་དཔལ་འདུག་པའི་སྟོ་ཁེས་བྱ་བ་བཞུགས་སོ། །

स्वामी गम्पोपाद्वारा रचित दागपोका चार धर्महरूको

साधारण भाषामा व्याख्या :

हीनमति प्रवेशद्वार नाम विहरतिस्म



रचनाकार:

महामहोपाध्याय ठाङ्ग रिन्पोछे

भोट भाषाबाट अनुवाद :

मिलन शाक्य

ठङ्गु धर्माकर पब्लिकेशन,  
ठाङ्गु टासी याङ्चे गुम्बा, नमोबुद्ध, काभ्रे  
पो. ब. नं. १२८७ काठमाडौं, नेपाल  
वेबसाईट: [www.rinpoche.com](http://www.rinpoche.com)

बुद्ध सम्बत् - २५६९      विक्रम सम्बत् - २०८२  
ईश्वरी सम्बत् - २०२५      नेपाल सम्बत् - ११४५

लेखक: महामहोपाध्याय ठाड्गु रिन्पोछे

नेपाली अनुवादक: मिलन शाक्य

दाता: खेन्यो कर्म दावा (हङ्कङ् ठाङ्गु सेन्टर)

टाइपसेटिंग्ग र पुस्तक डिजाइन: मिलन शाक्य

**आवरणपृष्ठ:** आचार्य डोड्डुप ग्याल्छेन

ISBN: 9789937-1-6620-1



**Dharma  
K a r a**

Namo Buddha Municipality-01, Kavre, Bagmati Province  
P.O. Box 1287, Kathmandu, Nepal  
Website: [www.rinpoche.com](http://www.rinpoche.com) [www.namobuddha.org](http://www.namobuddha.org)

## THE FOUR DHARMAS OF GAMPOPA

# विषयसूची

|                                                                                                               |          |
|---------------------------------------------------------------------------------------------------------------|----------|
| श्रद्धेय छोय्ज्ये लामाज्यू आशीर्वचन .....                                                                     | vii-viii |
| अनुवादकीय.....                                                                                                | ix       |
| मङ्गलार्चरण तथा ग्रन्थको विषयवस्तु.....                                                                       | १        |
| १. धर्मको परम्परा: ऐतिहासिक पृष्ठभूमि.....                                                                    | २        |
| २. मुख्य अङ्ग: चार धर्महरूको व्याख्या.....                                                                    | ७        |
| २.१ मति धर्ममा लाग्नु.....                                                                                    | ०८       |
| २.१.१. मति धर्ममा जानुपर्ने कारणको सामान्य व्याख्या .....                                                     | ०८       |
| २.१.२. प्रतिकूल प्रत्यय अर्थात् आलस्यलाई त्याग्नपर्ने विषयमा उपदेश .....                                      | ०९       |
| ख.२.१ अवसाद कौसीद्यलाई त्याग्नको निमित्त हेतुको रूपमा तथागत-<br>गर्भलाई जानुपर्ने विषयमा उपदेश .....          | १०       |
| ख.२.२ आलस्य कौसीद्यलाई त्याग्नको निमित्त दुर्लभ मनुष्य शरीरलाई<br>आश्रयको रूपमा जानुपर्ने विषयमा उपदेश .....  | १५       |
| ख.२.२.१ आलस्य कौसीद्यको पहिचान.....                                                                           | १५       |
| ख.२.२.२ आश्रयको रूपमा मनुष्य रत्नलाई जानुपर्ने उपदेश .....                                                    | १६       |
| ख.२.३ कुत्सितासक्ति कौसीद्यलाई त्याग्नको निमित्त प्रत्ययको कल्याण-मित्र<br>सेवन गर्नुपर्ने विषयमा उपदेश ..... | १८       |
| ख.२.३.१ कुत्सितासक्ति कौसीद्यको पहिचान .....                                                                  | १८       |
| ख.२.३.२ प्रत्ययका रूपमा कल्याणमित्र सेवन गर्नुपर्ने विषयमा उपदेश .....                                        | २०       |
| २.२ धर्म मार्गमा परिणत हुनु .....                                                                             | २३       |

|                                                                                                            |    |
|------------------------------------------------------------------------------------------------------------|----|
| २.२.१. साधारणतया: अधिक महत्त्वपूर्ण विषयका रूपमा वैराग्यको देशना                                           | २३ |
| २.२.२. विशेषतः तीन आसक्तिहरूलाई त्याग्नुपर्ने विषयमा उपदेश ....                                            | २५ |
| ख. विशेष छुट्टाछुट्टै व्याख्या.....                                                                        | २७ |
| ख.१ यस जीवनका विषयहरूप्रतिको आसक्तिका प्रतिपक्ष अर्थात् अनित्यको भावना .....                               | २८ |
| ख.२ संसारका सुख वा सांसारिक सुखप्रतिको आसक्तिका प्रतिपक्ष अर्थात् संसारका दोषहरू तथा कर्म-फलको भावना ..... | ३२ |
| ख.३ शमसुखप्रतिको आसक्तिको प्रतिपक्ष अर्थात् मैत्री-करुणाको भावना                                           | ३६ |
| ग. सारांश.....                                                                                             | ३९ |
| २.३ मार्गले भ्रान्ति नाश गर्नु.....                                                                        | ४१ |
| २.३.१. मार्ग कसरी भ्रान्तिनाशक हो भन्ने विषयमा निर्देश .....                                               | ४१ |
| २.३.२. भ्रान्ति नाश गर्ने उपायस्वरूप बोधिचित्तको भावना कसरी गर्ने भन्ने बारेमा व्याख्या.....               | ४२ |
| क. परमार्थ बोधिचित्तको सङ्क्षिप्त निर्देश.....                                                             | ४२ |
| ख. संवृत्ति बोधिचित्तको विस्तृत व्याख्या .....                                                             | ४३ |
| ग. सारांश.....                                                                                             | ५८ |
| २.४ भ्रान्ति ज्ञानको रूपमा उदय हुनु .....                                                                  | ६० |
| २.४.१. (प्राणीहरू) भ्रान्तिमा रहने नय (प्रणालि).....                                                       | ६० |
| क. (प्राणीहरू) भ्रान्तिमा रहने नयका बारेमा सङ्क्षिप्त व्याख्या .....                                       | ६० |
| ख. आठ विज्ञानका समूहमार्फत भ्रान्त हुने नयको विस्तृत व्याख्या ....                                         | ६२ |
| २.४.२. भ्रान्ति ज्ञानको अवस्थामा परिणत हुने नय (प्रणालि) .....                                             | ६७ |

|                                                                                      |    |
|--------------------------------------------------------------------------------------|----|
| क. भ्रान्ति ज्ञानका रूपमा उदय हुने नयको सारांश.....                                  | ६७ |
| ख. पाँच मार्गमा हिँड्ने नय.....                                                      | ६८ |
| ग. अष्टविज्ञानका समूह पञ्च ज्ञानमा परिणत हुने नयको विस्तृत व्याख्या ६९               |    |
| घ. फल अर्थात् बुद्धत्व प्राप्त हुने नय.....                                          | ७३ |
| ङ. समुदाचार निर्विकल्प सत्त्वार्थक्रियाका नय .....                                   | ७४ |
| ३. अन्तमा चार धर्महरूको अभ्यासमा कसरी प्रवेश गर्न सकिन्छ भन्ने बारेमा<br>उपदेश ..... | ७८ |
| सन्दर्भग्रन्थ र टिप्पणीहरू.....                                                      | ८० |





## श्री नमोबुद्ध बौद्ध धर्म ध्यान तथा शिक्षण केन्द्र

ठाडगु टासी छोयलिङ्ग गुम्बा बौद्ध काठमाडौं

२०५३

७७। मर्गेतु नुस गसुम ग्री कुय प गउेग वसुस प। ।

स प्र अगु यी सु स सुगस हे उव। ।

सि वदग सैगस वसस गसुम अग्रे व य। ।

नुस कुव कद मेद प र सुगस हे स गवेगस। ।

दे य द वसस गसुम के स ग्री कुय प के स हे सु स प व सै द वसस दे व के व स म ठ म मे द  
नु गस प के सु हे स म दे द प दे नु गस प के स व के अ दे दे नु ग्री के ग दे व कु स स दे ग स सु प दे न गे स के द  
नु द मी ग स दे। दे ग स द द नु ग्री य अ वे र गृ क ग्री उ व व द ग य सु व स हे य द स अ दे व स व व के व दे  
हे अ क द के व प के स ग स द द व द ग स र सु प दे दे र य य सु द ग्री य स व स गे व दे र व गृ य प दे हे  
सु स प प दे ग स द नु गस प के स व के य स सु द नु व गृ य प सु दे स व अ सु ग प दे सु वे स पु व य ग स  
व ग द म द नु सु द व ग द। ठे क र म र्गे त प ग द गी ज य सु प य दे व मी य व सु ग (Lotsawa Milan  
Shakya) म के ग व स व सु व द र अ ग्रे प दे दे व नु गृ क सु द द र सु ग व स स सु के व प दे सु वे स ग लु द ।  
अ दे दे न गे ग म र व य सु द गे ग व व सु र ग व द। व र नु वृ सु गी सै ग स म दे द। म व र व अ सु सु ग  
र कु म सु र व द व स प र नु व सु व ग व द व र हे स सु यी र द द र। गृ क नु सु द प अ दे कु य प दे व व सु व  
प दे व प के र व स अ दे ग स द द मी ग द वे र अ सु र के द। उ व प र के स अ दे दे व व य स सु मे द नु उ व  
प दे सु वे व अ नु व व उ स।

के स हे सु स प दे म दे अ दे व प द व द सु ग सु व स व व व स।

पु यो २०२३ ज्ञा ८ के स १८ द र। वे द यो २१५० ज्ञा ७ के स ३० अ ग्रे व र नु स व व द  
द गे प दे ठे व म र सु य प द गे यो। ।





## अनुवादः

तीनै कालका जिननाथहरूको एकिकृत स्वरूप  
ठाङ्गुका करुणावान पिता गुरु  
मजस्ता त्रिधातुका सत्त्वहरूलाई  
सदासर्वदा निरन्तररूपमा हेरिरहनुहोस् ।

यस सन्दर्भमा त्रिधातुका राजा धर्मस्वामी गम्पोपा पुण्यरत्न (सोयनाम् रिन्ध्येन्) अर्थात् अतुल्य दागपो ल्हाज्येद्वारा विरचित दागपोका चार धर्महरू (दागपो छ्योय् शिह) नामक यस ग्रन्थका शब्दार्थहरू बोधसुलभ वा सबैले सजिलै बुझ्न सक्ने हुनुपर्छ । यस कुरालाई ध्यानमा राखेर सम्पूर्ण सर्वव्यापी कुल तथा मण्डलाधिपति शरणस्वामी योङ्जिन् खेन् छ्येन् दोर्जे छ्याङ् ज्यूद्वारा श्रद्धावान नवप्रवेशी साधकहरूले पनि सहजै बुझ्न सकिने बोलचालको सरल भाषामा मिलाएर लेखिएको यस स्वामी गम्पोपाद्वारा रचित दागपोका चार धर्महरूको साधारण भाषामा व्याख्या : हीनमति प्रवेशद्वार नाम विहरतिस्म नामक ग्रन्थ एकदमै अद्भूत र सुभाषित उपदेश हो । हालै मात्र यस ग्रन्थलाई हाम्रा नाथ गुरुका शिष्य लोचावा मिलन शाक्यज्यूले बुद्धशासन र सत्त्वहरूको कल्याणका लागि विपुल समुत्थान तथा अध्याशय चित्त उत्पाद गरेर सबैभन्दा पहिले नेपाली भाषामा अनुवाद गर्नुभयो । बिचमा नेपाली अनुवादको सम्पादन गरियो र शुद्धाशुद्धी हेरियो । अन्तमा ठाङ्गु धर्माकर प्रकाशनद्वारा प्रकाशित गरियो । यी सबै कार्यहरूको अनुमोदन गर्दछु । यस समुदाचार (सम्पूर्ण चर्या) द्वारा जिन शासनरत्नको सेवा होस् साथै यो (सबैद्वारा) अनुकरणीय आदर्शतम ग्रन्थ नै बनोस् । विशेषतः यो धर्म चर्या अनन्त रूपमा विस्तार हुँदै जाओस् भन्ने शुभेच्छा र प्रणिधानसहित छ्योय् ज्ये लामे मिङ् जिन्पा वाङ्छ्युग् तोब्देनद्वारा सन् २०२३ वर्ष सेप्टेम्बर १४ तारिख, तदनुसार २१५० भोट वर्ष, ७ महिना ३० औं दिन अर्थात् सङ्क्रम र योग मिलेको मङ्गलमय शुभ दिने समर्पितम् । शुभमस्तु

## अनुवादकको तर्फबाट

भट्टारक मिलारेपाका सूर्यसमान शिष्य दागपो ल्हाज्ये वा गम्पोपा पुण्यरत्नज्यूले लेख्नुभएको दागपो छज्योय् शिह वा दागपोका चार धर्महरूको अति सरल र मर्मस्पर्शी भाष्य भोट भाषामा परमपूज्य श्रद्धेय गुरुवर ठाङ्गु रिन्पोछेज्यूले लेख्नुभएको हो। उहाँले भोट भाषामै लेख्नुभएको यस मौलिक कृतिको नेपाली भाषामा अनुवाद गर्न पाउँदा म ज्यादै हर्षित, अधिष्ठित, गौरवान्वित भएको छु। पूर्वजन्मकै पुण्याभिसंस्कारका कारण मैले उहाँको यस अत्यन्तै महत्त्वपूर्ण ग्रन्थलाई आम नेपाली भाषी जनमानससामु सर्वसुलभ र सहज नेपाली भाषामा नै अनुवाद गरेर प्रचार प्रसार गर्ने सुअवसर पाएको हुँ। मैले गुरुवरबाट त्रिशरणगमन, बोधिसत्त्वसंवरदेखि लिएर बुद्धधर्मका धेरै नै शिक्षाहरू पाएको छु। तर दुःखद कुरा, अहिले भौतिकरूपमा उहाँ हाम्रोसामु रहनुभएन। तर “म लगायत सारा प्राणीहरूको हितका लागि उहाँको निर्माणकाय छिट्टै प्रकट होस् र उहाँबाट पुनः पूर्ववत् आफ्ना बोधिसत्त्वचर्यालाई तदारूखताका साथ अगाडि बढाइयोस्” भन्ने प्रार्थना भित्रि हृदयबाट नै गर्न चाहन्छु।

भट्टारक मिलारेपाका सूर्यसमान शिष्य दागपो ल्हाज्ये वा गम्पोपाका तीन ग्रन्थहरू सद्धर्ममोक्षरत्नलङ्कार, मार्गोत्तम रत्नमाला, र दागपोका चार धर्महरू लाई भविष्यमा श्रवण गरेको खण्डमा वा पढेर अभ्यास गरेको खण्डमा स्वयं दागपो रिन्पोछेको प्रत्यक्ष दर्शन गर्नुभन्दा खासै भिन्न हुने छैन। त्यसकारण ती तीन ग्रन्थहरूलाई श्रवण, चिन्तन तथा भावनामार्फत अभ्यास गर्नुपर्छ। यो कुरा स्वयं गम्पोपाले नै भन्नुभएको हो। यी तीन ग्रन्थमध्ये सद्धर्ममोक्षरत्नलङ्कार नेपाली भाषामा अनुवादित भइसकेको छ। मार्गोत्तम रत्नमाला अहिलेसम्म नेपाली भाषामा अनुवादित भइसकेको छैन। शायद भविष्यमा यसको पनि नेपाली भाषामा अनुवाद होला। भोट भाषामा लेखिएको यस पवित्र ग्रन्थको नेपाली अनुवाद गर्ने कार्यमा मलाई

विशेष मद्दत पुन्याउनुहुने सबै आदरणीय व्यक्तिहरूप्रति भित्रि हृदयबाट आभार प्रकट गर्न चाहन्छु । सबैभन्दा पहिले परमपूज्य श्रद्धेय गुरुवर ठाङ्गु रिन्पोछेज्यूको अमूल्य र अति पावन कृतिलाई नेपाली भाषामा अनुवाद गर्ने जिम्मेवारी सुम्पिदिनुभएको र यस पुस्तकको एकदमै आकर्षक चित्र सहित आवरणपृष्ठ समेत तैयार गरिदिनुभएको मा आचार्य डोडुप ग्याल्छेनज्यूप्रति म हार्दिक आभार व्यक्त गर्न चाहन्छु । अनुवादित पाण्डुलिपिलाई आद्योपान्त पढेर भाषा शुद्धाशुद्धी गरिदिने अति मृदुभाषी मित्र नीरज दाहालज्यूप्रति पनि कृतज्ञ छु । त्यस्तै अष्ट्यारा पारिभाषिक तिब्बती शब्दहरू र वाक्यहरूलाई अर्थ्याइदिने अति आदरणीय व्यक्तित्वहरू क्रमशः ज्यिन्या ग्याछोज्यू (गुणसागर भन्तेज्यू), ख्येन्पो राजेश कर्माचार्यज्यू, आचार्य छोय्ङ्ङ रोकायामगरज्यू तथा लोचावा पुण्यप्रसाद पराजुलीज्यू प्रति पनि हार्दिक आभार प्रकट गर्न चाहन्छु । त्यसरी नै यो अनुवादित ग्रन्थलाई दिल खोलेर प्रायोजन गर्नुहुने आदरणीय दाता हङ्कङ् ठाङ्गु सेन्टरका ख्येन्पो कर्म दावाज्यूलाई पनि भित्रि हृदयदेखि कृतज्ञता जाहेर गर्न चाहन्छु । यस ग्रन्थमा भएका बुद्धशिक्षाको अध्ययन र अभ्यासले सबै सुख र सुखको कारणले युक्त होउन् तथा दुःख र दुःखको कारणले मुक्त होउन् । एकपल्ट फेरि परमपूज्य श्रद्धेय गुरुवर ठाङ्गु रिन्पोछेज्यूको अति शिघ्र निर्माणकाय प्रकट होस् भन्ने कामना गर्दछु ।

मिलन शाक्य

अनुवादक

बैसाख, २०८१

## मङ्गलार्चन तथा ग्रन्थको विषयवस्तु

अकनिष्ठ धर्मधातुको प्रासादमा  
सबै त्रिकाल बुद्धहरूको स्वभाव(रूपी)  
स्वचित्तलाई धर्मकायका रूपमा प्रत्यक्ष दर्शन गराउने  
मूल गुरुको पादकमलमा सादर दण्डवत् ॥

हो, ठिक छ । आकाशसमान सत्त्वहरू सबैलाई सर्वाकारज्ञ अनुत्तर सम्यक्सम्बोधिको भूमिमा स्थापना गर्नुपर्छ । त्यसका लागि गम्भीर सङ्घर्ष श्रवण गरेर विधिवत् ढङ्गले (भित्री हृदयबाट) अभ्यास गर्नु भनी चिन्तन गर्नुहोस् र त्यसपछि उत्तम बोधिचित्तोत्पाद गरेर यो धर्म सुन्नका लागि अनुरोध गर्दछु ।

स्वामी दागपो (गम्पोपा)द्वारा बताइएका हीनमतिको प्रवेशद्वाररूपी दागपोका चार धर्महरूको साधारण भाषामा व्याख्याका निम्न तीन अङ्ग रहेका छन् :

१. धर्मको परम्परा : ऐतिहासिक पृष्ठभूमि
२. ग्रन्थको मुख्य अङ्ग जुन चार धर्महरूको व्याख्या हो
३. अन्तमा यसमा कसरी प्रवेश गर्न (यसको अभ्यास कसरी गर्न) सकिन्छ भन्ने बारेमा उपदेश

## १. धर्मको परम्परा : एतिहासिक पृष्ठभूमि

आजको यस अवसरमा स्वामी गम्पोपाद्वारा विरचित दाग्योका चार धर्महरूका बारेमा उपदेश ग्रहण गर्दैछौं। साधारणतया: दाग्यो रिन्पोछे (स्वामी गम्पोपाको अर्को नाम) सम्पूर्ण काग्युपा परम्पराको नेत्र समान हुनुहुन्छ। विशेषतः काग्यु परम्परामा असामान्य विशेष धर्म के छन्? यसमा समाधिको अभ्यास विशेष रूपले उच्च छ। त्यस्तो हुनुको पछाडि कारण के हो त? सम्यक्सम्बुद्ध भगवान् शाक्यमुनि तथागतले लोकमा प्रादुर्भाव भएर धर्मचक्र प्रवर्तन गर्नुभयो। त्यसबेला उहाँले समाधिराज सूत्रको देशना गर्नुभयो। त्यसबखत अतुल्य दाग्यो रिन्पोछे चन्द्रप्रभ कुमारका रूपमा जन्मिनुभएको थियो। उहाँ धर्म श्रवण गर्दै गणमा विराजमान भइरहुनुभएको थियो। तत्पश्चात् भगवान् बुद्धले यस्तो आज्ञा गर्नुभयो, “शिष्यहरूमध्ये यो समाधिराज सूत्रको प्रचार प्रसार गर्न को सक्षम होला?” त्यतिखेर, चन्द्रप्रभ कुमार बोधिसत्त्व आफ्नो आसनबाट जुरुक्क उठेर यस्तो भन्दै प्रतिज्ञा गर्नुभयो, “अनागत अर्थात् भविष्यमा समाधिराजसूत्रको यो शासनलाई मैले प्रचार प्रसार गर्ने छु।”

चन्द्रप्रभ कुमार बोधिसत्त्वले त्यसरी प्रतिज्ञा गर्नुभएको बेला अन्य शिष्यहरूले पनि “भविष्यमा चन्द्रप्रभकुमार बोधिसत्त्वले समाधिराजसूत्रको धर्म शासनको प्रचार प्रसार गर्ने बेलामा हामीले उहाँलाई सहयोग गर्नेछौं”, भन्दै स्वीकृति जनाए र बाचा गरे।

त्यस्तै प्रकारले *करुणापुण्डरीक सूत्र* इत्यादिमा पनि सम्यक्सम्बुद्ध भगवान् शाक्यमुनिले “भविष्यमा चन्द्रप्रभकुमार बोधिसत्त्वले भिक्षु वैद्यका रूपमा जन्म लिनेछन् भनी अङ्गीकार गर्नुभएको छ, अनि वैद्य भन्ने भिक्षुको रूपमा जन्म लिएर उनले त्यतिखेर महालोहित नदीको

किनारातिर समाधिराजसूत्रको धर्मचक्रप्रवर्तन गर्नेछन् । अनि जसरी भगवान् बुद्धको शासन आकाश रहुज्जेलसम्म स्थित रहने छ त्यसरी नै यस समाधिको अभ्यासमा पनि परिहानि नभइकन उत्तरोत्तर अभिवृद्धि हुँदै जानेछ र त्यसबाट (सबैलाई) ठुलो लाभ हुने छ,” भनी व्याकरण अर्थात् भविष्यवाणी गर्नुभएको छ ।

अतः भगवान् बुद्धद्वारा व्याकरण (भविष्यवाणी) गरिएझैं चन्द्रप्रभ कुमार बोधिसत्त्व भिक्षु वैद्य वा अतुलनीय दागपो रिम्योछेको काय लिएर जन्मिनुभयो । उहिले सम्यक्सम्बुद्ध भगवान् शाक्यमुनिको सम्मुखमा सद्धर्मसमाधिराज सूत्र श्रवण गरेको कारणले उहाँसँग विशेष जन्मजात गुणहरू थिए । त्यसमाथि पछि हासिल हुँदै गएका गुणहरूको कुरा गर्ने हो भने सबैभन्दा पहिले कादाम्पाका विशिष्ट कल्याणमित्रहरूसँग सत्सङ्गत गरेर हिमाच्छादित गढ भोट देशमा बुद्धधर्मलाई प्रकाश पार्नुहुने सूर्यसमान जोवोज्ये अर्थात् श्री अतीश दीपङ्कर श्रीज्ञानबाट प्रसारित हुँदै आएको कादाम्पा परम्पराका उपदेशहरूलाई उहाँले पूरै ग्रहण गरेर अभ्यास गर्नुभयो । अनि विशिष्ट समाधि उहाँको चित्त सन्ततिमा उत्पाद भयो । त्यति मात्र नभएर उहाँ वायुको आवागमनलाई रोकेर समाधिस्थ हुन सक्नुहुन्थ्यो । उहाँ आकाशसमान समाधि जस्ता समाधिगुणहरूले युक्त हुनुभयो ।

त्यतिले मात्र गम्पोपा सन्तुष्ट हुनुभएन । क्यिढोङ् भन्ने ठाउँतिरभट्टारक मिलारेपा विराजमान हुनुहुन्थ्यो । भट्टारक मिलारेपाको नाम र उहाँको विमोक्ष कथा (नाम्थार) सुनेर गम्पोपा भट्टारक मिलारेपाको सम्मुखमा उपस्थित हुन त्यहाँबाट हिँड्नुभयो । भट्टारक मिलारेपाको सम्मुख परेर गम्पोपाले उहाँबाट धेरै उपदेशहरू सुन्नुभयो र ग्रहण गर्नुभयो । गम्पोपाले उपदेश मात्र पाउनुभएको थिएन, भट्टारक मिलारेपासँगै बसेर ती सम्पूर्ण उपदेशहरूको बारेमा भएका शङ्का र

गलत बुझाइहरूलाई पनि छेदन वा निवारण गरेर ती उपदेशहरूमा पूरै पारङ्गत्व हासिल गर्नुभएको थियो ।

त्यसपछि भट्टारक मिलारेपाले गम्पोपालालाई यस्तो भविष्यवाणी (व्याकरण) गर्दै भन्नुभयो, “पूर्वमा गम्पो धार् पर्वततिर जाऊ । त्यहाँ गएर सत्त्वार्थक्रिया (प्राणीहरूको उद्धार गर्ने काम) गन्थौ भने एकदमै वृहत् एवं व्यापक तवरले सत्त्वार्थक्रिया गर्न सक्षम हुने छौ । भविष्यवाणी अनुसार नै हिँड्दा हिँड्दै गम्पोपा गम्पो धार् पर्वततर्फ आइपुग्नुभयो । अनि उहाँको मनमा यस्तो विचार आयो, “म यो ठाउँमा पुग्नुपर्छ भनेर गुरुले भविष्यवाणी गर्नुभएको थियो । गुरुले भविष्यवाणी गर्नुभए अनुसार नै यो ठाउँमा बाह्र वर्षसम्म एउटा साधनागृहमा आफूलाई थुनेर भावना अभ्यास गर्ने छु । यसरी नै म साधना गर्ने छु ।”

त्यति नै बेला, एउटी डाकिनीले गम्पोपालालाई यस्तो भनिन्, “यहाँ बाह्रवर्षसम्म आफूलाई थुनेर भावना अभ्यास गर्नुभन्दा त बाह्रवर्षसम्म बुद्धधर्मको प्रचार प्रसार गरेर बस्नु झनै बेस हुने छ । हो, यसरी बाह्रवर्षसम्म साधना गरी बसिरहनु भन्दा बाह्र वर्ष सत्त्वार्थक्रिया र धर्म प्रचार प्रसार गरेर बस्नु नै अधिक कल्याणकारी हुने छ ।” यस्तो भन्दै डाकिनीले भविष्यवाणी गरिन् ।

तत्पश्चात् गम्पोपा यस्तो सोचमा डुब्नुभयो, “भविष्यवाणी गरिए अनुसार नै सबैभन्दा पहिले सत्त्वार्थक्रिया गर्ने छु । उद्धार नै गर्नुपर्ने हो भने अहिले चाहिँ कसको उद्धार गर्नुपर्ला ?” यस्तो सोच्नेबित्तिकै तीन ओटा क्षेत्रहरू अर्थात् उड्, चाङ् र खाम्बाट धेरै (अनन्त) शिष्यहरू त्यो ठाउँमा एकत्रित हुन आए । ती शिष्यहरू धर्मोपदेश गर्न योग्य पात्रहरू थिए । उनीहरूले गम्पोपाबाट धर्म श्रवण गरे । त्यसबेला दाग्यो रिन्पोछे (गम्पोपा) ले धर्मदेशना गर्ने बेलामा कादाम्पा र महामुद्रा (काछ्याग्) का उपदेशहरू रूपी दुई नदीहरूलाई एउटै नदीमा मिसाएर



बताउनुहुन्थ्यो । अर्थात् मार्पा तथा मिलारेपाको परम्पराबाट निःसृत गम्भीर मन्त्रको महामुद्राका उपदेशहरू र कादाम्पा अतीश दीपङ्कर श्रीज्ञानको परम्पराबाट निःसृत उपदेशहरूलाई एउटै ठाउँमा राखेर उपदेश दिनुहुन्थ्यो ।

गम्पोपा (दागपो रिन्पोछे) ले अति विशिष्ट शिष्यहरूलाई भट्टारक मिलारेपाको परम्पराबाट निःसृत नारोपाका ६ धर्म<sup>१</sup> को उपाय मार्ग तथा महामुद्राको मुक्तिमार्गका उपदेशहरू प्रदान गर्नुहुन्थ्यो । त्यस्तै गरी आदिकर्मिक अर्थात् सुरु सुरुका शिष्यहरूलाई उहाँले जोवोज्ये अर्थात् अतीश दीपङ्कर श्रीज्ञानको परम्पराबाट निःसृत कादाम्पाको मार्गक्रम (लामरिम्) तथा महामुद्राको उपदेश प्रदान गर्नुहुन्थ्यो । अनि अत्यन्तै विशिष्ट सिद्धि प्राप्त महातपस्वी नै भएर निस्कने खालका मात्र उहाँका शिष्यहरू थिए ।

तत्पश्चात् यस ठाउँमा विनेयजनहरू वा सत्त्वहरूको उद्धार कार्यलाई पूरा गरेर आफ्नो ज्ञान चित्त (गोङ् पा) परिनिर्वाणमा प्रवेश हुन लागेकै बेला गम्पोपाले के भन्नुभएको थियो भने, “‘भविष्यमा मेरा शिष्यहरूका पनि शिष्यहरू, तिनका पनि शिष्यहरू आदिले मलाई (दागपो रिन्पोछेलाई) दर्शन नै गर्न पाइने, दागपो रिन्पोछेको सम्मुख नै हुन पाइने वा उहाँबाट उपदेश नै ग्रहण गर्ने सौभाग्य पाइने’ भन्ने सोचेर उनीहरूको मन कुँडिन सक्छ वा उदास हुन सक्छ । उनीहरूको मन दुःखी हुने धेरै सम्भावना छ, तर उनीहरूले मनमनै दुःखी भएर वा उदास भएर बस्नु आवश्यक छैन । किन त्यसरी उदास वा दुःखी हुनुपर्दैन भन्दा मैले देशना गरेका (ग्रन्थका रूपमा रहेका) यी तीनथरी उपदेशहरू जस्तै अत्यन्तै विशाल *सद्धर्ममोक्षरत्नालङ्कार*<sup>२</sup>, त्योभन्दा अलि सङ्क्षिप्त *मार्गोत्तम रत्नमाला*<sup>३</sup>, अझ त्यो भन्दा पनि अत्यन्तै सङ्क्षिप्त समाधि अभ्यासलाई मात्र समेटिएर देशना गरिएको *दागपोका*

चार धर्महरूलाई भविष्यमा श्रवण गरेको खण्डमा वा पढेर अभ्यास गरेको खण्डमा स्वयं दाग्यो रिन्पोछेको प्रत्यक्ष दर्शन गर्नुभन्दा खासै भिन्न हुने छैन। त्यसकारण तिमीहरूले ती तीन ग्रन्थहरूलाई श्रवण, चिन्तन तथा भावनामार्फत अभ्यास गर्नुपर्छ।”

त्यसरी नै साधारणतया: शिष्यहरूमध्ये पनि विभिन्न धातु वा गोत्रका शिष्यहरू धेरै हुन्छन्। कोही शिष्यहरू तीक्ष्ण बुद्धिका हुन्छन् वा महाज्ञानी (शेराब् छेन्पो) हुन्छन्। उनीहरू तीक्ष्ण इन्द्रिय (तीक्ष्णेन्द्रिय) का हुन्छन्। कोही तीक्ष्ण बुद्धि र तीक्ष्ण इन्द्रियका हुँदैनन्। कोही कोही त मन्द बुद्धि (शेराब् क्योपो) र मृदु इन्द्रियका पनि हुन्छन्। त्यसोभए तीक्ष्ण बुद्धि भएकाहरू र मन्द बुद्धि भएकाहरूका आवश्यकताहरू के के हुन् त भनी सोध्ने हो भने यसको जवाफ हो : किञ्चित् मात्र वा सङ्क्षेपमा मात्र बताए पनि तीक्ष्ण बुद्धिवालाहरूले बुझ्न सक्दछन्। त्यस्ता व्यक्तिहरूलाई उपदेश दिनका लागि दाग्योका चार धर्महरूको देशना गरिन्छ। त्यस्तै मझौला खाले प्रज्ञाबुद्धि र मध्येन्द्रिय भएकाहरू (शेराब् डिङ्वा) लाई अलिकति वा किञ्चित् मात्र बताएर बुझाउन सकिन्छ। त्यसरी उनीहरूले बुझ्दैनन्। उनीहरूलाई ध्यानमा राखेर अलिकति विस्तारमा व्याख्या गरिएको *मार्गोत्तम रत्नमाला* (लामछ्योग् रिन्छेन् ठेङ्वा) को देशना गरिन्छ। त्यसपछि, अल्पज्ञानी वा मृदु इन्द्रियवालाहरूले त्यति विस्तृत व्याख्या पनि बुझ्दैनन्। त्यो भन्दा पनि अलिकति विस्तृत रूपले धेरै नै व्याख्या गरेपछि मात्र उनीहरूले बल्ल बुझ्न सक्दछन्। जसको आधारमा उनीहरूले राम्रोसँग भावना गर्न सक्दछन्। मृदु इन्द्रिय तथा अल्पज्ञानीहरूको आशयलाई बुझेर विस्तृत रूपमा व्याख्या गरिएको *सद्धर्ममोक्षचिन्तामणिरत्नालङ्कार*को देशना गरिन्छ। अतः ती तीन ग्रन्थ नै गम्पोपाले रचनुभएको मुख्य ग्रन्थहरू हुन्।

## २. मुख्य अङ्ग : चार धर्महरूको व्याख्या

ग्रन्थको मुख्य अङ्गका चार भेदहरू छन् :

१. मति धर्ममा लाग्नु
२. धर्म मार्ग बन्नु
३. मार्गले भ्रान्ति नाश गर्नु
४. भ्रान्ति ज्ञानको रूपमा उदय हुनु

## २.१ मति धर्ममा लाग्नु

पहिलो शीर्षक मति धर्ममा लाग्नु वा जानु हो । त्यसका पनि दुई भेद छन् :

२.१.१. मति धर्ममा जानुपर्ने कारणको सामान्य व्याख्या

२.१.२. प्रतिकूल प्रत्यय अर्थात् कौसीद्यलाई त्याग्नपर्ने विषयमा उपदेश

### २.१.१. मति धर्ममा जानुपर्ने कारणको सामान्य व्याख्या

आज प्राप्त गरिने शिक्षाको बारेमा भन्नुपर्दा मुख्य बुझ्नुपर्ने कुरा यी हुन् । तीक्ष्ण बुद्धि वा तीक्ष्ण इन्द्रियवाला विनेयजनहरूको सन्दर्भमा भन्ने हो भने उनीहरूलाई दाग्नोको चार धर्महरूमा मात्रै समेटेर धर्मदेशना गरिन्छ । ती नै मुख्य धर्म देशना हुन् । ती अन्तर्गत पनि पहिलो धर्म अर्थात् दाग्नोका चार धर्महरूमध्ये पहिलो धर्म मति धर्ममा लागोस् वा जाओस् भन्ने हो । त्यसमा के कुरा एकदमै महत्त्वपूर्ण छ त भन्दाखेरी सबैभन्दा पहिले काय धर्मद्वार वा धर्ममा प्रवेश हुनु वा काय धर्ममा प्रवेश हुनुभन्दा पनि चित्त धर्ममा प्रवेश हुनु सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कुरा हो । उदाहरणका लागि काय धर्ममा लागेपछि पहिरन बदलिन्छ र कपाल पनि बदलिन्छ, इत्यादि तर ती सबैभन्दा पनि अधिक महत्त्वपूर्ण कुरा त सुरुदेखि नै मन वा मति धर्ममा लाग्नु हो । ठिक त्यसरी नै वाक् (बोलीवचन) द्वारा प्रार्थनाहरू गर्नु वा पाठहरू पढ्नु इत्यादि गर्नु भन्दा पनि मन धर्ममा परिणत हुनु वा मति धर्ममा परिणत हुनु भनेको अत्यन्तै महत्त्वपूर्ण कुरा हो ।

त्यसो भए मति धर्ममा लाग्ने कारण के हुनुपर्छ त भनी सोध्ने हो भने (त्यसको जवाफ यसरी दिन सकिन्छ ।) साधारणतयाः सम्यक्सम्बुद्ध भगवान् बुद्धले जुन कुरा बताउनुभयो त्यो केवल सत्यसँग मात्र सम्बन्धित थियो । त्यो सत्यसँग परिचित हुनको लागि सत्यलाई सत्यकै रूपमा जान्नुपर्छ । सत्यमाथि सही विश्वास जगाउन सक्नुपर्छ । भगवान् बुद्धले प्रथम धर्मचक्रप्रवर्तनको अवसरमा चार आर्य सत्य र दुई सत्यको बारेमा व्याख्या गर्नुभएको थियो । उहाँले झुठो र छली धर्महरूलाई मुख्य र महत्त्वपूर्ण धर्मका रूपमा देशना गर्नुभएको थिएन । सत्यको यथाभूतता वा अवस्थिति (नेलुग)<sup>५</sup> नै उहाँले मुख्य धर्मको रूपमा देशना गर्नुभएको कारणले हामीले चार आर्य सत्यको वस्तु अवस्थिति (नेलुग) लाई राम्रोसँग जान्नुपर्छ र बुझ्नुपर्छ । सत्यको वस्तु अवस्थिति वा यथाभूतता बोध भयो भने त्यसको आधारमा हामीले धर्म अभ्यास किन गर्नुपर्छ भन्ने कुरा छर्लङ्गे थाहा पाउन सक्छौं । धर्म अभ्यास गर्दा के फाइदा हुन्छ भन्ने कुरा पनि हामीलाई स्पष्ट हुन आउँछ । त्यो कुरामा निर्भर भएर नै मति धर्ममा लाग्छ वा लाग्नसक्छ ।

## २.१.२. प्रतिकूल प्रत्यय अर्थात् आलस्यलाई त्याग्नुपर्ने विषयमा उपदेश

यसका पनि दुई भेद छन् : क. सङ्क्षिप्त व्याख्या र ख. विस्तृत व्याख्या

ख.१ सङ्क्षिप्त व्याख्या : यस प्रकार सत्यको यथास्थितिलाई जान्न र बुझ्न सकेपनि मति धर्ममा नलाग्नुको पछाडि प्रतिकूल प्रत्ययहरू के के हुनसक्लान् भनी सोध्ने हो भने (यसको जवाफ यसरी दिन सकिन्छ ।) मुख्य प्रतिकूल प्रत्ययका रूपमा कौसीद्य नै रहेको छ । कौसीद्य तीन प्रकारका हुन्छन् भनी बताइएको छ । तीन प्रकारका कौसीद्य यस प्रकार रहेका छन् : १. अवसाद वा स्वप्रताडनाको कौसीद्य, २. आलस्य

ग्राह कौसीद्य र ३. कुत्सितासक्ति कौसीद्य । अतः : यी तीन प्रकारका कौसीद्यहरू के के हुन् भनी चिन्नुपर्छ । ती कौसीद्यहरूलाई राम्रोसँग चिनिसकेपछि तिनीहरूलाई त्याग्ने उपायहरू के हुन् अनि तिनीहरूलाई त्याग्नपर्ने कारणहरू के के हुन् भन्ने कुरा राम्रोसँग बुझ्नुपर्छ । त्यसरी राम्रोसँग बुझेर ती कौसीद्यहरूलाई त्याग्न सकेको खण्डमा हाम्रो मति धर्ममा लाग्ने छ वा क्रमशः लाग्दै जाने छ ।

ख.२ विस्तृत व्याख्या : विस्तृत व्याख्याका पनि ३ भेद छन् । ती हुन् : १. अवसाद कौसीद्यलाई त्याग्नको निमित्त हेतुको रूपमा तथागतगर्भलाई जान्नुपर्ने विषयमा उपदेश, २. आलस्य कौसीद्यलाई त्याग्नको निमित्त दुर्लभ मनुष्य शरीरलाई आश्रयको रूपमा जान्नुपर्ने विषयमा उपदेश, ३. कुत्सितासक्ति कौसीद्यलाई त्याग्नको निमित्त प्रत्ययको रूपमा कल्याणमित्र सेवन गर्नुपर्ने विषयमा उपदेश ।

*ख.२.१ अवसाद कौसीद्यलाई त्याग्नको निमित्त हेतुको रूपमा तथागत-गर्भलाई जान्नुपर्ने विषयमा उपदेश*

(माथि बताइएझैं) कौसीद्य तीन प्रकारका हुन्छन् । तीमध्ये पहिलो प्रकारको कौसीद्य अर्थात् अवसाद कौसीद्यको सन्दर्भमा भन्नुपर्दा आफैँलाई होच्याउनु, हतोत्साहित तुल्याउनु, प्रताडना इत्यादि गर्नुलाई अवसाद कौसीद्य भनिन्छ । हीनताबोधपूर्ण भावले आफैँलाई हतोत्साहित पारेर यस्तो सोचिन्छ, “मबाट त भावना अभ्यास हुनै सक्दैन । मबाट त धर्म अभ्यास हुनै सक्दैन । मबाट त वीर्यको अभ्यास हुनै सक्दैन । म त गरीब छु । म त दुःखी र नीच छु ।” उदाहरणार्थ, “भगवान् बुद्धले पो अभिसम्बोधि प्राप्त गर्न सक्नुभयो तर मजस्तोले अभिसम्बोधि कसरी प्राप्त गर्न सक्ँला र ? म सक्दिन ।” वा “भट्टारक मिलारेपा र

गम्पोपा जस्ता महापुरुषहरू परम वा अन्तिम फलका रूपमा महामुद्राको बोधलाई साक्षात्कार गर्न सक्षम हुनुभयो तर मजस्तोले त्यस्तो फल लाभ गर्न सक्दिन। मजस्तोले त कुनै पनि हालतमा त्यस्तो गर्न सक्दिन। अरूले सक्छन् होला तर मैले त्यस्तो गर्न सक्दिन।” यस्तो सोच्दै आफूलाई हदैसम्म हतोत्साहित गरिन्छ। आफूलाई अवमूल्यन गरिन्छ। हामी स्वयंले आफ्नै आत्मबल गिराउँदै बस्छौं, हिनताबोधमा रुमलिएर बस्छौं। यस्तो प्रकारको व्यवहार र सोच नै अवसाद कौसीद्य हो।

यस्तो कौसीद्य हामीमा किन हुन्छ त ? माथि भनिएझैं “हामीजस्ताले धर्म अभ्यास त गर्ने सक्दैनौं। धर्म अभ्यास गर्ने क्षमता र भाग्य नै हामीमा छैन, धर्म अभ्यासमा प्रवेश नै गरेता पनि केही लाभ हुनेवाला छैन र धर्म अभ्यास नै गरेता पनि अन्तिम फल पाउने क्षमता हामीमा छैन भनी सोचेर हामीले आफ्नो मनोबल गिराइरहेका हुन्छौं। जसले गर्दा हाम्रो मति धर्ममा लाम्नुमा ठुलो विघ्न पैदा हुन्छ। त्यसकारण, त्यसरी सोचेर आफ्नो मनोबल, आत्मविश्वास वा उत्साह गिराउनु आवश्यक छैन। यस्तो सोचेर आफूले आफैलाई प्रताडित गर्नु आवश्यक छैन। कोही पनि (गुरुले हामीलाई) हतोत्साहित गर्नुभएको वा होच्याएर कुरा गर्नुभएको हामीले सुन्दैनौं र सुन्ने छैनौं पनि। त्यस्तो हीनताबोध गराउने खालका कुरा किन हामीले सुन्दैनौं। त्यस्तो पछाडि कारण वा हेतु के हो ? (यसको जवाफ तल दिइने छ)

त्यो पङ्क्ति कै दोस्रो वाक्यांशमा उल्लेख भए अनुसार हेतुका रूपमा तथागतगर्भलाई चिन्नुपर्छ वा जान्नुपर्छ। जस्तो सद्धर्मचिन्तामणिमोक्ष-रत्नालङ्कारमा बताइएको छ :

हेतु नै तथागतगर्भ वा सुगतगर्भ हो।

माथि बताइएझैं प्राणी जो सुकै भएपनि ठिकै छ । किनभने बुद्धको हेतु, अनुभूति र बोध हासिल गर्ने हेतु, भविष्यमा सिद्धि प्राप्त गर्ने हेतु भनेकै सुगतगर्भ हो । त्यो सुगतगर्भ सबै प्राणीहरूमा व्याप्त हुन्छ । उदाहरणार्थ, सुगतगर्भ सबैमा हुन्छ, पुरुषमा पनि हुन्छ, स्त्रीमा पनि हुन्छ । त्यसरी नै धनी व्यक्तिमा पनि सुगतगर्भ हुन्छ र गरीब व्यक्तिमा पनि हुन्छ । लामो आयु बाँचिसकेको वयोवृद्धमा पनि हुन्छ भने कम उमेरका बालबालिका तथा युवायुवतीमा पनि हुन्छ । गुणै गुण भएको व्यक्तिमा पनि हुन्छ भने एउटा पनि गुण नभएको व्यक्तिमा पनि हुन्छ ।

त्यसैकारणले सबैमा यो सुगतगर्भ विद्यमान भए पुद्गल जोसुकै भएपनि वा जेसुकै भएपनि त्यसले खासै फरक पर्दैन । उसले जतिसुकै अभ्यास गरेपनि अन्ततोगत्वा अन्तिम फल प्राप्त गर्ने नसक्ने भन्ने हुँदैन । मिहिनेत गरे अन्तिम फल उसले प्राप्त गरेरै छाड्ने छ । किनभने फल प्राप्त गर्ने जुन हेतु छ त्यो ऊ आफैंमा विद्यमान हुन्छ । त्यो हेतु आफूमा विद्यमान भएको बेला यदि मिहिनेत गरेर अभ्यास गरियो भने अन्तिम फल प्राप्त हुनै नसक्ने भन्ने कुरा आउँदैन । (अन्तमा फल नदिने) त्यस्तो हेतु कुनै पनि हालतमा हुनै सक्दैन ।

यस प्रकार सबै सत्त्वहरूमा हेतुका रूपमा सुगतगर्भ विद्यमान छ । त्यति मात्र नभएर, बुद्ध र बोधिसत्त्वहरूको सुगतगर्भ अलिकति माथिल्लो स्तरको हुने तर हामी पृथग्जनहरूको यो सुगतगर्भ भने तल्लो स्तरको हुने, त्यस्तो हुन्छ कि ? भनी सोध्ने हो भने त्यसको जवाफ हो : “त्यस्तो हुँदैन” किनभने बुद्धमा जुन विद्यमान छ, त्यही हामीमा पनि विद्यमान छ ।

सत्त्वहरूकै सन्दर्भमा पनि, सयौँ सत्त्वहरू नै भएपनि सयौँ सत्त्वहरूको सुगतगर्भको शक्ति एकै समानको हुन्छ, गुण पनि एकै



समानको हुन्छ, त्यो भन्दा भिन्न हुनै सक्दैन अथवा कसैको सुगतगर्भ त्यो भन्दा अलिकति भए पनि भिन्न वा अर्कै हुनै सक्दैन वा भन्नुं, त्यो भन्दा कसैको सुगतगर्भ अलिकति माथिल्लो स्तरको हुँदैन। सबैको सुगतगर्भ समान नै हुन्छ। कारण त्यही हो र त्यसकै आधारमा हामी स्वयंले आफैँलाई होच्याउन सक्दैनौं वा कम आँकन सक्दैनौं। “मैले गर्न सकिदिन” भनी कसैले सोच्यो भने ऊ पटमूर्ख नै हो भनी ठाने हुन्छ। त्यसकारण “सुगतगर्भ साँच्चै ममा विद्यमान छ” भनी विश्वास गर्नुपर्छ। आफूमा भएको सुगतगर्भमा त्यस्तो अटल विश्वास हुनुपर्छ र त्यसैको आधारमा अवसाद कौसीघलाई हटाउँदै लान सकिन्छ।

त्यसो भए, यदि हामीसँग भएको सुगतगर्भ र बुद्धको सुगतगर्भ समान नै छ भने (पनि हामी अहिले त बुद्ध होइनौं र बुद्धजस्तो पनि होइनौं।) हामी बुद्ध जस्तै नै हुन नसक्नुको पछाडि के कारण छ त ? भनी सोध्ने हो भने त्यसको उत्तर हो : आफूहरूसँग सुगतगर्भ छ भन्ने सत्य नै हामीलाई थाहा छैन। हामी त्यो सत्यबाट अनभिज्ञ छौं। त्यही अनभिज्ञताको कारण अहिलेसम्म हामीले बुद्धत्व प्राप्त गर्न सकेका छैनौं, सिद्धि प्राप्त गर्न सकेका छैनौं। त्यस्तो गर्न नसक्नुका दोषहरू त्यसरी अज्ञानताका कारण पैदा भएका छन्। त्यसकारण सम्यक्सम्बुद्ध भगवान् बुद्धले जुन कुरा विद्यमान छ, त्यसलाई “विद्यमान छ” भनेर चिनाउनुभएको छ। उदाहरणार्थ, कुनै सूत्रमा यस्तो बताइएको छ :

परापूर्वकालमा एउटा ठुलो सुनको ढिका फोहरमैलाको डङ्गुरसितै मिसिएर हजारौं वर्षसम्म त्यतिकै बेवारिसे हालतमा रहिरहेको थियो। के त्यसरी फोहरसँगै मिसिएर रहँदा त्यो सुनको स्वभावमा परिवर्तन आइसकेको थियो त ? भनी सोध्ने हो त्यसको जवाफ हो : त्यो सुनको स्वभावमा रत्तिभर पनि परिवर्तन भएको थिएन। एक वर्ष त के, सय वर्ष नै बिते पनि वा हजारौं वर्ष नै बितेर गए पनि सुनको गुण वा

स्वभावमा अलिकति पनि परिवर्तन भएको थिएन। पहिले जुन रूपमा थियो ठिक त्यही रूप र त्यही स्वभावमा फोहरको डङ्गुरसित त्यो सुन मिसिएर रहिरहेको थियो।

त्यसपछि त्यो फोहरको डङ्गुरमाथि एउटा दरिद्र मगन्तेले आफू बस्नको लागि एउटा झुप्रो बनायो। झुप्रो दयनीय थोत्रो थियो। त्यस्तो घरमा ऊ जीवनयापन गरेर बसिरहेको थियो। त्यतिखेर ऊसँग खासै धनसम्पत्ति थिएन। अर्को शब्दमा भन्ने हो भने ऊ कङ्गाल नै थियो किनभने त्यो दरिद्र मान्छेले आफ्नै घरमुनि ठुलो सुनको ढिका लुकेको छ भन्ने कुराको भेउ नै पाएको थिएन। त्यसकारण, त्यो मगन्तेले अत्यन्तै दरिद्र भएर जीविका चलाउँदै बसिरहेको थियो। त्यस प्रकार त्यो सुनको स्वभावमा कुनै पनि परिवर्तन भएको थिएन। त्यो दरिद्र पनि त्यही सुन माथि बसिरहेको थियो। त्यसपछि, कुनै एक दिन, एक अभिज्ञा सम्पन्न व्यक्ति त्यहाँ टुप्लुक्क आइपुगे। त्यतिखेर त्यो दरिद्र व्यक्ति एकदमै दुःख र कठिनाइका साथ बसिरहेको थियो तर वास्तवमा त्यो दरिद्र त्यसरी दुःख र कठिनाइका साथ कुनै पनि हालतमा बसिरहनुपर्ने आवश्यकता थिएन। उसको घरमुनि त ठुलो सुनको ढिका नै त्यही ठाउँमा लुकेर रहिरहेको थियो तरपनि उसलाई त्यो कुराको पटककै ज्ञान भएन। त्यो ठुलो सुनको ढिकालाई बाहिर निकाल्न सके कुनैपनि प्रकारको कठिनाइ रहने थिएन। त्यो ठुलो सुनको ढिकालाई निकाल्न सके धनसम्पत्तिको समस्या कुनै पनि हालतमा आउने छैन भन्ने सोचेर त्यो अभिज्ञासम्पन्न व्यक्तिले दरिद्रको ठाउँमा पुगेर यस्तो भने, “तिम्रो घरको भुइँमुनि ठुलो सुनको ढिका लुकेको छ। तिमीले तिम्रो घरको भुइँ अलिकति मात्र खन्नुपर्छ। अनि त तिमीले त्यो सुनको ढिका भेटाइहाल्ने छौ। तिमीले त्यो ठुलो सुनको ढिका फेला पाउँछौ भने तिम्रो यो दरिद्रताको दुःखबाट सदाको लागि छुटकारा पाउने छौ।”

यस्तो कुरा सुनेपछि त्यो गरीब व्यक्तिले पनि अभिज्ञासम्पन्न व्यक्तिले भनेजस्तै नै आफ्नै घरभित्रको भुइँ वा जमीन अलिकति खन्न थाल्यो । केही बेर खनेपछि साँच्चिकै त्यो ठुलो सुनको ढिकालाई बाहिर निकाल्न ऊ सक्षम भयो । जसको फलस्वरूप ऊ आफ्नो गरिवीको दुःखबाट छुटकारा पाउन सक्षम भयो ।

त्यसबेला दरिद्र व्यक्तिको घरको जमीनमुनि लुकिरहेको बेला र त्यतिखेर दरिद्र व्यक्तिले त्यो सुन बाहिर निकालेको बेला सुनको स्वभाव (वा गुणस्तर)मा किमार्थ भिन्नता थिएन तर त्यो दरिद्र व्यक्तिले त्यो सुनको उपभोग गर्न पाए कि पाएन भन्ने बेग्लै कुरा हो । भिन्नता वा फरक त्यति कुरोको मात्र हो ।

त्यसैकारण, सुगतगर्भ हामीसँग भएको आधारमा हामीले अन्तिम फल अर्थात् बोधि पक्कै पनि पाएरै छाड्छौँ । चिन्तामणिरत्नका रूपमा सुगतगर्भ हामीसँग छ । यसलाई त्यसै खेर जान दिनु हुँदैन । अर्को शब्दमा भन्ने हो भने यसलाई त्यसै खेर नफाल्ने कुरा अत्यन्तै महत्त्वपूर्ण र अत्यावश्यक छ । त्यसैलाई राम्रोसँग जानेर र बुझेर यो अवसाद कौसीद्यलाई हामीले त्याग्नुपर्छ ।

ख.२.२ आलस्य कौसीद्यलाई त्याग्नको निमित्त दुर्लभ मनुष्य शरीरलाई आश्रयको रूपमा जान्नुपर्ने विषयमा उपदेश

यसका पनि दुई भेद छन् : १. आलस्य कौसीद्यको पहिचान र २. आश्रयको रूपमा मनुष्य रत्नलाई जान्नुपर्ने उपदेश

ख.२.२.१ आलस्य कौसीद्यको पहिचान

त्यसपछि, दोस्रो कौसीद्य अर्थात् आलस्यग्राह कौसीद्यलाई किन त्याग

आवश्यक छ भन्ने प्रश्नको सन्दर्भमा भन्ने हो भने साधारणतया काम खराब भए पनि, असल भए पनि वा खराब असल जस्तोसुकै भए पनि कुनै पनि काम गर्न मन नै नलाग्नु वा काम गर्ने इच्छा नै नहुनुलाई नै आलस्यग्राह कौसीद्य भनिन्छ । त्यस्तो प्रकारको कौसीद्यलाई त्याग्ने उपायका बारेमा के भावना गर्नुपर्छ भन्ने प्रश्नको सन्दर्भमा तलको बुँदामा व्याख्या गरिन्छ ।

### ख.२.२.२ आश्रयको रूपमा मनुष्य रत्नलाई जान्नुपर्ने उपदेश

सद्धर्मचिन्तामणिमोक्षरत्नालङ्कारमा ‘आश्रय उत्तम मनुष्य रत्न हो ।’ भनी बताइएझैं अहिले हामीले मनुष्य शरीर पाएका छौं । मनुष्य शरीर पाउनु नै एकदमै महत्त्वपूर्ण कुरा हो । उदाहरणका लागि कुकुर वा बिरालो जस्तो पशु भएर जन्मियो भने आलस्य कौसीद्यमा रुमलिएर जीवन बिताउनुबाहेक अर्को विकल्प नै हुँदैन । हो, सुगतगर्भ त ती पशुहरूमा पनि हुन्छ तर तिनीहरूमा त्यो सुगतगर्भलाई साक्षात्कार गर्ने उपायको अभ्यास गर्ने क्षमता किमार्थ हुँदैन । प्रयोजनबिना नै यताउता कुद्ने, उफ्रिने काम बाहेक तिनीहरूले अरु केही गर्न सक्दैनन् तर हाम्रो मनुष्य शरीर ती पशुहरूको जस्तो छैन । सद्धर्म (सद्धर्मचिन्तामणिमोक्षरत्नालङ्कार) मा बताइएझैं आठ क्षण र दस सम्पदले युक्त मनुष्य रत्न भनिएको शरीरको शुभ आश्रय अहिले पाइएको छ । यस्तो शुभ आश्रय त्यतिकै खेर फाल्नका लागि होइन । उदाहरणका लागि कुकुर वा बिरालोको जुनीमा जस्तै हामीले यस दुर्लभ आश्रयलाई व्यर्थै खेर फालेर बस्यौं भने मनुष्य जुनी पाएर मात्र पनि त्यसमा खासै विशेषता रहने छैन तर हाम्रो यस मनुष्य जुनीको आश्रयलाई त्यसरी व्यर्थै खेर जान नदिएर निश्चितताका साथ वीर्य (परिश्रम) को अभ्यास गरेर यसलाई सार्थक

तुल्याउनु पर्छ वा यसबाट सार निकाल्नुपर्छ । आलस्यग्राहमा त्यसै लट्टिएर बस्नु उचित छैन भन्ने बारेमा जिनपुत्र आचार्य शान्तिदेवले आफ्नो बोधिचर्यावतार नामक ग्रन्थमा यस्तो बताउनुभएको छ :

मानुष्यं नावमासाद्य तर दुःखमहानदीम् ।

मूढ, कालो न निद्राया इयं नौर्दुर्लभा पुनः ॥ ७.१४ ॥

अर्थ : हे मूर्ख, तिमीले यो मनुष्य जन्म पाएका छौ । यो त संसारको दुःखबाट तर्नलाई डुङ्गा समानको हो । अतः यसको सहारा लिएर तुरुन्तै पार लागिहाल । यस्तो बेलामा सुतेर बस्नु हुँदैन ।

माथिको श्लोकमा बताइएझैं उदाहरणका लागि हामी नदीको किनारामा बसिरहेका छौं, नदी तरेर पारि पुग्न हामीलाई डुङ्गाको खाँचो छ । त्यतिखेर, हामीले डुङ्गालाई “छिटो आऊ” भनी ठुलो स्वरले बोलाउँदै बस्यौं भने पनि डुङ्गा आउँदैन । त्यो नदीलाई छोडेर अर्को बाटो भएर पारि पुग्न सकिन्न । पारि पुग्न त्यो नदी तरेर जानैपर्छ । त्यसो भए नदी कसरी तर्ने त ? त्यो महानदी तर्न एउटा डुङ्गाको खाँचो पर्दछ । त्यो डुङ्गा हरेक दिन एकचोटि मात्र आउँदो रहेछ । आज चाहिँ ११ बजे त्यो डुङ्गा आइपुग्ने रहेछ । त्यसैबेला त्यो डुङ्गा चढेर नदीको पारिपट्टि जानु नै छ भने ठिक ११ बजे हामीले चनाखो भएर डुङ्गा आइपुग्यो कि आइपुगेन भनी हेरेर बस्नुपर्ने हुन्छ । ११ बजे डुङ्गा त्यहाँ आइपुग्दा हामी किनारामै मस्तसँग निदाएर बस्यौं भने डुङ्गा त हामीलाई त्यहीँ छोडेर गइसकेको हुने छ । त्यसकारण हामीले त्यसैबखत निश्चित रूपमा होस पुर्‍याउनु पर्ने हो नि, होइन र ?

त्यही दृष्टान्त अनुरूप नै हाम्रो यो मनुष्य शरीर रूपी आश्रय पटक पटक पाइरहने आश्रय होइन तर जे होस् अहिले यो अति विशिष्ट

आश्रय पाइएको छ । यसैबखत दुःखको महानदी तरेर जान आवश्यक छ । अहिले हामीले अत्यन्तै सावधान हुन वा होस पुऱ्याइरहन आवश्यक छ । त्यसरी चनाखो र सावधान हुन सकिएन र त्यतिखेर आलस्यमै डुबेर मस्तसँग निदाएर बसियो भने डुङ्गा छुटेजस्तै नै त्यो दुर्लभ मौका पनि छुट्ने छ वा हातबाट फुत्किने छ ।

त्यसकारण अहिले हामीले पाएको मनुष्य जुनीको आश्रय जस्तोसुकै भए पनि, भन्नुको अर्थ हाम्रो मनुष्य जुनी दुःखै दुःखले भरिएको भए पनि, धनी भए पनि, गुणसम्पन्न वा गुणविपन्न (गुणरहित) भए पनि, पुरुष भएपनि वा महिला भए पनि ठिकै छ । जे होस् मनुष्य शरीर धारण गर्न पाइराखेका छौं । त्यो नै ठुलो कुरा हो । अन्य लोकका प्राणीहरूको जुनीभन्दा मनुष्य जुनी अत्यन्तै विशिष्ट भएको भएर कौसीद्यको वशमा नपरेर सद्धर्मको विषयमा राम्रोसित बुझ्न सकिने अवस्था हुनुपर्छ वा राम्रोसित सद्धर्मलाई जान्नु बुझ्नुपर्छ । सद्धर्मलाई राम्रोसँग जानेर बुझेर आलस्यग्राह कौसीद्यलाई त्याग्नपर्छ । अनि धर्ममा मति लगाउन सक्नुपर्छ ।

ख.२.३ कुत्सितासक्ति कौसीद्यलाई त्याग्नको निमित्त प्रत्ययको कल्याणमित्र सेवन गर्नुपर्ने विषयमा उपदेश ।

यसका पनि दुई भेद छन् : १. कुत्सितासक्ति कौसीद्यको पहिचान र २. प्रत्ययका रूपमा कल्याणमित्र सेवन गर्नुपर्ने विषयमा उपदेश

ख.२.३.१ कुत्सितासक्ति कौसीद्यको पहिचान

तत्पश्चात्, (हामी कुत्सितासक्तिको बारेमा छलफल गर्ने छौं) । तेस्रो कौसीद्य कुत्सितासक्ति हो । कुत्सितासक्ति कौसीद्यलाई कसरी त्याग्न

सकिन्छ त ? साधारणतया: लौकिक दृष्टिले सोच्ने हो भने काम जुनसुकै जस्तोसुकै भए पनि त्यो काममा ठुलो उत्साह, अभिरुचि र श्रद्धा राखी अत्यन्तै लगनशील भएर एवं डटेर लागिपर्नुलाई नै परिश्रम गर्नु वा मिहिनेत गर्नु भनिन्छ तर धर्मको दृष्टिकोणले सोच्ने हो भने त्यस्तो लौकिक परिश्रमलाई वीर्य भनिंदैन। अरूलाई हानि हुने र आफूलाई पनि हानि हुने दुष्कर्म, खराब आदि जस्ता हानिकारक कामहरू फत्ते गर्नमा लगनशील भएर लाग्यौं भने त्यस्तो कार्यसिद्धिलाई कुत्सितासक्ति कौसीद्य भनिन्छ।

“वीर्य” भनेको के हो? आचार्य शान्तिदेवले बोधिचर्यावतारमा बताउनुभएको छ :

*किं वीर्य ? कुशलोत्साह :..... ।*

आचार्य शान्तिदेवले बताउनुभएझैं, यदि सद्धर्म अभ्यास गर्नमा वा आफू र अरूको हित हुने कार्यहरूमा ठुलो उत्साह उमङ्ग र लगनशीलता जागेको छ भने त्यसलाई नै वीर्य अभ्यास भन्न सकिन्छ। यदि त्यस्तो नभएर कुकर्म, खराब, दुराचारी, घृणित वा अनैतिक काममा ठुलै लगनशीलता छ भने पनि त्यसलाई वीर्य अभ्यास भनिंदैन। त्यसलाई नै कुत्सितासक्ति कौसीद्य भनिन्छ। कुत्सितासक्ति कौसीद्यले गर्दा मन धर्ममा लाग्दैन। अर्को शब्दमा भन्नुपर्दा त्यसले मन धर्ममा लाग्ने प्रकृत्यामा भाँजो हाल्ने काम गर्दछ। त्यसकारण त्यस्तो कौसीद्यलाई चटकै त्यागियो भने मन धर्ममा लाग्ने छ।

खराब वा कुत्सित काम के हो ? असल काम वा सत्कर्म के हो ? कुत्सितासक्ति कौसीद्य भनेको कस्तो हो ? कुत्सितासक्ति कौसीद्य नभएको वीर्य अभ्यास भन्नाले कस्तो अभ्यास हो ? यी यावत् प्रश्नहरूको जवाफ

हामीले अहिले राम्रोसँग जानेकै बुझेकै छैनौं। ती सबै कुराहरूलाई राम्रोसँग जानिसकेपछि मतिलाई धर्ममा लगाउने उपाय के हो ? (भन्नेप्रश्न मनमा आउँला जसको व्याख्या तल गरिने छ।)

ख.२.३.२ प्रत्ययका रूपमा कल्याणमित्र सेवन गर्नुपर्ने विषयमा उपदेश

सद्धर्मचिन्तामणिमोक्षरत्नालङ्कारका अनुसार,

प्रत्यय नै कल्याणमित्रहरू हुन्।

सद्धर्मचिन्तामणिमोक्षरत्नालङ्कारमा बताइएझैं हामीले कल्याणमित्रको सेवन गर्नुपर्छ। अर्को शब्दमा भन्ने हो भने हामीले कल्याणमित्रहरूसँग सत्सङ्गत गर्न आवश्यक छ। साधारणतया मित्र असल सुहृद् हुनुपर्छ। सुहृद् मित्र सद्धर्म अनुरूपको पनि हुनुपर्छ। सद्धर्मको अभ्यास गर्नमा प्रेरित गर्ने मित्र नै त्यस्तो सुहृद् मित्र हो जसलाई कल्याणमित्र भन्न सकिन्छ। त्यस्तो कल्याणमित्रको सेवन गरेको खण्डमा कुत्सितासक्ति कौसीद्यलाई त्याग्न सकिन्छ। त्यसकारणले गर्दा नै मति धर्ममा लाग्छ वा धर्ममा मिसिन सक्छ। त्यसकारण कल्याणमित्र अत्यन्तै महत्त्वपूर्ण र आवश्यक छन् किनभने जस्तो माथि नै बताइ सकिएको छ, हामीसँग हेतुका रूपमा सुगतगर्भ छ। आश्रयका रूपमा मनुष्यरत्न पनि छ। ती सबै भएर पनि हामीले हेतुरूपी सुगतगर्भलाई राम्रोसँग जानेका छैनौं वा बुझेका छैनौं। प्रत्ययरूपी मनुष्य जीवन पाएर पनि हामी पुण्यको अभ्यासमा प्रवेश गर्ने कुरामा अनुभवहिन व्यक्तिजस्तै हौं। हामीलाई पुण्यको अभ्यास कसरी गर्ने भन्ने कुरै थाहा छैन। त्यसकारणले गर्दा कुशल (पुण्य) को अभ्यास कसरी गर्नुपर्छ, पाप (अकुशल) लाई कसरी त्याग्नुपर्छ र धर्म अभ्यास कसरी गर्नुपर्छ भन्ने बारेमा केही पनि



मेसो पाउन सक्दैनौं। अतः हामीले सद्धर्मको ज्ञान भएको एउटा व्यक्तिमा निर्भर हुनैपर्ने हुन्छ वा त्यस्तो व्यक्तिको सेवन गर्नेपर्ने हुन्छ। उदाहरणार्थः बाटो थाहा नपाएको कुनै व्यक्तिको साथमा पहिले त्यो बाटो हिँडिसकेको, त्यो बाटो खराब छ कि राम्रो छ भन्ने राम्रोसँग जानेको, बाटो बिराउन सकिने ठाउँहरू कहाँ कहाँ छन् भन्ने कुराको बारेमा राम्रो ज्ञान भएको एउटा साथी पनि छ भने उसले एउटा पाइला हिँडे पनि दुईटा पाइला हिँडे पनि वा जति पाइला हिँडे पनि उसको पाइला खेर जाँदैन। जहाँ जाने इच्छा हो त्यही सकुशल पुग्न सकिन्छ। त्यस्तो मार्गदर्शक भएन भने बाटो थाहा नभएको व्यक्ति एकलै एउटा बाटो हिँड्छ। (एकछिन पछि) “ए म त गलत बाटो पो हिँडिरहेको छु,” भन्ने सोच फर्केर जाला। फेरि कुनै एउटा बटुवालाई सोध्दा उसले “त्यो बाटो होइन, यो बाटो पो हो” भन्ला। उसको कुरा सुनेर त्यो व्यक्ति फेरि त्यही बाटो सरासर हिँड्न थाल्छ। एकछिन पछि दोबाटोमा पुगेपछि ऊ फेरि अल्मलिन्छ। फेरि अर्कै बटुवालाई सोधेपछि उसले “तपाईं त्यहाँबाट जानुपर्छ, यहाँबाट होइन,” भन्ला। यसरी नै त्यहाँबाट जाने, यहाँबाट जाने भन्दा भन्दै त्यो व्यक्ति व्यर्थैमा बाटो बिराएर हिँडेको हिँड्दै गरिरहेको हुन्छ। उसको लामो हिँडाइ व्यर्थै खेर जान्छ। त्यति मात्र होइन, बाटोभरी ठुलो कठिनाइ झेलेर ठसठस कन्दै हिँड्नुपर्ने हुन्छ। यसरी अनाहकमा धेरै मानिसहरूसित सोध्दै हिँड्नुपर्ने हुन्छ। बाटो राम्रोसँग थाहा पाउने व्यक्ति साथमै भइदिएको भए गणरातिदेखि अहिलेसम्म हिँडेको हिँड्दै गरेपनि एक पाइला पनि त्यसै खेर जाने थिएन। अनि आफ्नो गन्तव्य स्थानसम्म पनि सकुशल नै पुग्न सकिन्थ्यो।

त्यो उदाहरण जस्तै नै धर्म अभ्यासको बेलामा पनि असल, अभ्यास गरेको र अत्यन्तै वीर्यवान कल्याणमित्र एउटा साथमा भएमा

उनले राम्रोसँग मार्गदर्शन गर्ने छन् । जसले गर्दा हामी जुन वीर्य अभ्यास गर्छौं त्यो व्यर्थै खेर जाने छैन । हेय (त्यागुपर्ने) जे हुन्, उपादेय (ग्रहण गर्नुपर्ने वा सिद्ध गर्नुपर्ने) जे हुन् र अभ्यास गर्नुपर्ने जे हुन् ती सबै राम्रोसँग जानेर बुझेर अभ्यास गर्न सक्ने हुन्छौं । ती सबै कारणहरूले गर्दा कुत्सितासक्तिलाई त्याग्नका लागि उपायका रूपमा कल्याणमित्रको सेवन गर्नुपर्ने हुन्छ ।

यसरी तीन प्रकारका कौसीद्यहरूलाई त्याग्ने उपायका लागि १. हेतुको रूपमा सुगतर्गर्भ हामी सबैमा विद्यमान छ भन्ने कुरा जान्नुपर्छ, २. आश्रयको रूपमा मानवदेहरत्न अत्यन्तै महत्त्वपूर्ण छ भन्ने कुरा बुझ्नुपर्छ र ३. प्रत्ययका रूपमा कल्याणमित्र सेवन कति महत्त्वपूर्ण छ भन्ने कुरा जान्नुपर्छ । यी तीन कुराहरूलाई राम्रोसँग जान्नुपर्छ, बुझ्नुपर्छ । ती तीन कुराहरूको राम्रो ज्ञान भएमा तिनको आधारमा मन स्वतः स्फूर्त नै धर्ममा लाग्ने छ । मन धर्ममा लागेपछि त्यसको आधारमा तीनै प्रकारका कौसीद्यहरूलाई त्याग्न सक्षम भइन्छ ।

## २.२ धर्म मार्गमा परिणत हुनु

दोस्रो शीर्षक धर्म मार्गमा परिणत हुनु हो । त्यसका पनि दुई भेद छन् :

२.२.१. साधारणतया: अधिक महत्त्वपूर्ण विषयका रूपमा वैराग्यको देशना

२.२.१. विशेषत : तीन आसक्तिहरूलाई त्याग्नपर्ने विषयमा उपदेश

**२.२.१ साधारणतया: अधिक महत्त्वपूर्ण विषयका रूपमा वैराग्यको देशना**

अब हामी दागपोका चार धर्महरूमध्ये दोस्रो धर्मको व्याख्यातर्फ लाग्दै छौं । धर्म मार्गमा परिणत हुनु भन्ने शिक्षा नै दोस्रो धर्म हो ।

तदनुसार साधारणतया: धर्म अभ्यास गर्ने बेलामा धेरै मानिसहरूले धर्म मन परेकोले र धर्ममा श्रद्धा भएको कारणले मात्र धर्म अभ्यास गरिरहेका हुन्छन् तर त्यसमा अलिकति गल्ती छ जस्तो लाग्छ । धर्म अभ्यास गर्दै लगे अन्ततोगत्वा अन्तिम फल अवश्य पनि पाउन सकिन्छ । त्यस्तै प्रकारले संसारको अवस्थाबाट मुक्ति पाउनुपर्छ भन्ने सोचेर हृदयको भित्री गहिराइदेखि नै धर्म अभ्यास गर्नुपर्ने हो तर गल्ती नै यही हो कि आम जनमानसले त्यसरी अभ्यास गर्दैनन् । त्यसैले साधारणतया: नै धर्म अभ्यास गर्ने हो भने त्यसमा उद्देश्य त निहितै हुन्छ तर पनि वैराग्यको राम्रो सोचाई वा चिन्तन नै भएन भने त्यसको आधारमा सम्यक् अन्तिम फल यानेकि बुद्धत्व प्राप्त गर्न सकिन्न । त्यसै कारणले गर्दा अन्तिम फल वा बुद्धत्वको आलम्बन विषय र वैराग्यको चिन्तनका साथमा सम्यक् मार्गमा लागिपर्नुलाई नै धर्म मार्गमा परिणत हुनु भनिन्छ ।

त्यसरी नै अधिकांश मानिसहरूमा म त केवल धर्म गर्ने छु भन्ने सोचाइ हुन्छ तर बुद्धत्वकै अवस्थाका लागि धर्म अभ्यास गर्छु भन्ने सोचाइ र अभिरुचि भने हुँदैन। संसारबाट तरेर जान जरुरी छ भन्ने कुरामा उनीहरूको मनमा अभिरुचि अलिकति पनि जागृदैन। कुनचाहिँ कारणले गर्दा त्यस्तो हुन्छ त ? कारण के हो भने 'बुद्धत्वको अवस्था भनेको यो संसारको लोक होइन। त्यसको लागि अर्कै कुनै लोकमा जानुपर्छ। त्यसरी नै अर्कै ठाउँ र अर्कै फल रहे जस्तै त्रिधातुक संसारबाट तरेर जानुपर्छ भनेको पनि यो संसारमा नभएर अर्कै लोकमा जानुपर्छ भन्ने हो भन्ने खालका सोचाइहरू उनीहरूको मनमा उत्पन्न हुन्छन्। हो, त्यही कारणले त्यस्तो हुने हो अर्थात् उनीहरूमा अभिरुचि नहुने हो।

तर वास्तविक अवस्था त्यस्तो होइन। बुद्ध भन्ने संस्कृत वा पालि शब्दको तिब्बती अनुवाद साङ्ग्ये (སངས་རྒྱལ་) हो। साङ्ग्ये दुईटा शब्द मिलेर बनेको शब्द हो। ती दुई शब्द के के हुन् त ? हामीले भोग्ने दुःख उत्पन्न हुने वा दुःख समुदयको मूल (हेतु) भनेकै भित्री चित्तको क्लेश र अविद्या हुन् जसको कारण दुःख उत्पन्न हुन्छ। त्यसकारण सम्पूर्ण दुःखलाई हटाउनु छ भने भित्री चित्तका क्लेश र अविद्यालाई हटाउनैपर्छ। तिनलाई हटाइएन भने अन्तिम फल (निर्वाण) प्राप्त गर्न सकिन्न। त्यसकारण अविद्या, क्लेश इत्यादि भित्री चित्तका दोषहरू सबैलाई हटाउनका निमित्त भित्री चित्तको वास्तविक अवस्था (ने छुल गवस'རྒྱལ་) को राम्रो दर्शन हुनु जरुरी छ।

अतः, बुद्ध भन्ने शब्दलाई अर्थ्याउने हो भने आफ्नो चित्तमाथिका सम्पूर्ण दोष पक्षलाई हटाइसकेको तथा गुण पक्ष सबै विकसित भइसकेको वा बोध भइसकेकोलाई नै बुद्ध भनेर सम्बोधन गरिन्छ। त्यसै कारणले गर्दा अन्तिम वा परम फल अर्थात् बुद्धत्वको अवस्था लाभ गर्नका लागि भगवान् बुद्धले बताउनुभएका सद्धर्मको मार्गमा

गल्तीरहित वा भ्रमरहित भएर सम्यकरूपले लाग्नुपर्छ । उदाहरणका लागि, हामी अल्लारे भएर घन्टा, दुई घन्टा त्यसै डुलिरह्यौं भने हाम्रो शारीरिक व्यायाम त राम्रैसँग हुन्छ तर त्यतिखेर कुनै विशेष गन्तव्यमा वा यही ठाउँमा पुग्छु भनेर हामी किमार्थ हिँडेकै हुन्नौं । यदि त्यसरी हिँड्न चाहँदैनौं भने, अनि साँच्चै त्यही ठाउँमा पुग्नु छ भने बाटो नबिराइकन हिँडेर आजै त्यो ठाउँमा पुग्न सक्छौं । आज साँझ नै जसरी भएपनि त्यहाँ पुग्नु छ भन्ने खालको सोचाइका साथ हिँड्नुपर्छ ।

माथिको उदाहरण जस्तै अन्तिम आलम्बन विषय तथा वैराग्यको चिन्तन कुनै पनि नभइकन पनि केवल साधारण खाले पुण्य सञ्चयद्वारा मात्र धर्म अभ्यास गरिरह्यौं भने खासै गन्तव्यविहिन भएर डुलिरहनु जस्तो मात्र हुने छ । त्यसो गर्नु पनि ठिक त ठिकै हो तर पनि त्यसरी अन्तिम वा परम फल चाहिँ प्राप्त गर्न सकिन्न । त्यसकारण, अन्तिम वा परम फल प्राप्त गर्नका लागि भ्रम वा गल्तीरहित मार्गमा लाग्नुपर्छ । त्यस्तो मार्गमा हिँडेर “म (त्यो गन्तव्यसम्म पुग्नका लागि) यो ठाउँबाट हिँड्ने छु वा यो बाटो हिँड्ने छु ।” भन्ने सोचाइका साथ हिँड्नुपर्छ । त्यसैको आधारमा धर्म मार्गमा प्रविष्ट हुने अवस्था आउने छ ।

### २.२.२ विशेषतः तीन आसक्तिहरूलाई त्याग्नुपर्ने विषयमा उपदेश

यसका तीन भेद छन् : क. साधारण सामान्य व्याख्या, ख. विशेष छुट्टाछुट्टै व्याख्या, ग. सारांश

#### क. साधारण सामान्य व्याख्या

सामान्य व्याख्या अनुसार मति धर्ममा लागेता पनि धर्म भने मार्गमा

लाग्नु सकेको हुँदैन। धर्म मार्गमा लाग्नु नसक्नु वा धर्ममा परिणत हुनु नसक्नुको पछाडि मूल कारण के हो त ? वा त्यस्तो विघ्न के कुराले गर्दा उत्पन्न हुन्छ त ? यसमा मुख्य कारकतत्त्व त राग र आसक्ति नै हुन्। राग र आसक्तिले गर्दा नै त्यस्तो हुने हुन्। त्यसमा पनि यस जीवनका गोचरवस्तुहरू वा विषयहरूप्रति आसक्ति, संसारको सुखप्रति आसक्ति र शमसुख (निर्वाणको सुख) प्रति आसक्ति, यी तीन आसक्तिहरू छन्।

पहिलो अर्थात् यस जीवनका गोचरवस्तुहरू वा विषयहरूप्रतिको आसक्ति भन्नाले यो जीवन वा अहिलेको लौकिक प्रतिभास (मनलगायत पाँचैओटा इन्द्रियविज्ञानमा आभास हुने कुरा) प्रति ठुलै आसक्ति हुनु भनी बुझ्नुपर्छ। दोस्रो अर्थात् संसारको सुखप्रतिको आसक्ति भन्नाले साधारणतया: यस जीवनका कुरामा मात्रै आसक्त नभइकन यस लोक(मा गरेको कर्म) को फलस्वरूप मेरो राम्रो रूप होस् र अर्को जुनीमा पनि मलाई राम्रो सुख सुविधाहरू प्राप्त होउन् भन्ने खालको सोचाइ हुनु हो। त्यसरी नै तेस्रो अर्थात् शमसुखप्रतिको आसक्ति भन्नाले चाहिँ आफू एकलैलाई मात्र सुख प्राप्त होस् भन्ने सोचाइ हो भनी बुझ्नुपर्छ। यस्तै प्रकारले आफू एकलो व्यक्ति संसारबाट मुक्त हुन पाए कस्तो जाती हुन्थ्यो भन्ने खालको सोचाइप्रति ठुलो आसक्ति हुनुलाई पनि शमसुखप्रतिको आसक्ति नै भनिन्छ। त्यस्तो आसक्ति भएमा त्यसको प्रत्ययले धर्म मार्गमा लाग्ने प्रकृत्यामा विघ्न पैदा गरिदिन्छ।

त्यसो भए, धर्म मार्गमा लाग्ने क्रममा वा प्रकृत्यामा उत्पन्न हुने विघ्न अन्तरायका रूपमा जब माथि उल्लेखित आसक्तिहरूको उदय हुन्छ, तब ती आसक्तिहरूको आ-आफ्नै प्रतिपक्षको बारेमा क्रमैसँग भावना गर्नुपर्छ। त्यसरी बारम्बार भावना गरिरहनुपर्छ। त्यसप्रकार बारम्बार चिन्तन तथा भावना गर्न सके यथार्थ अवस्थिति (ति : नेलुग्

गवक्ष'सुगक्ष') लाई राम्रोसँग जान्न सकिन्छ । सत्यको यथार्थ अवस्थिति (ति : देन्मे नेलुग् चवक्ष'चवैगवक्ष'कुंय') राम्रोसँग जानेमा स्वतस्फूर्त : वा प्राकृतिक रूपले नै धर्म मार्गमा लाग्ने छ वा परिणत हुने छ । अनि त्यस्तो हुने बेलामा धर्म मार्गमा परिणत हुन नदिने विघ्नका रूपमा ती तीन आसक्तिहरूलाई त्याग्नुपर्छ । ती तीन आसक्तिहरूलाई कसरी त्याग्नुपर्छ त ? साधारणतया: सम्यक्सम्बुद्धका वचनहरू भनेको मात्र “सत्य” हुन् वा “सत्य” सँग मात्र सम्बन्धित हुन्छन् । त्यसो भएको हुनाले सत्यको अवस्थिति (देन्मे नेलुग्) लाई राम्रोसँग जान्नुपर्छ र त्यही ज्ञानको आधारमा ती आसक्तिहरूलाई त्याग्न सकिन्छ किनभने सत्यको यथार्थ अवस्थितिलाई राम्रोसँग जानिएन भने भ्रान्तिमा नै रुमलिइन्छ जसले गर्दा राग र आसक्तिहरू पैदा हुन्छन् । सत्यको यथार्थ अवस्थितिलाई राम्रोसँग जान्न वा बोध गर्न सकियो भने आसक्तिहरूबाट पनि मुक्ति पाइन्छ । त्यसकारणले गर्दा यस जीवनका विषयहरू (च्योए युल् कुँय'सुय') हरूमा आसक्ति पैदा भएको छ भने त्यसद्वारा धर्म मार्गमा परिणत हुने क्रममा ठुलै विघ्न उत्पन्न हुनेछ भनी चिन्तन गर्नुपर्छ । त्यसरी चिन्तन गरेर ती आसक्तिहरूको शक्ति कम गर्दै लाने उपाय अपनाउनमा परिश्रम गर्नुपर्छ ।

### ख. विशेष छुट्टाछुट्टै व्याख्या

यसका पनि तीन भेदहरू छन् : १. यस जीवनका विषयहरूप्रतिको आसक्तिका प्रतिपक्ष अर्थात् अनित्यको भावना, २. संसारका सुख वा सांसारिक सुखप्रतिको आसक्तिका प्रतिपक्ष अर्थात् संसारका दोषहरू तथा कर्म-फलको भावना र ३. शमसुखप्रतिको आसक्तिको प्रतिपक्ष अर्थात् मैत्री-करुणाको भावना ।

## ख.१ यस जीवनका विषयहरूप्रतिको आसक्तिका प्रतिपक्ष अर्थात् अनित्यको भावना

त्यसो भए, राग र आसक्तिको शक्तिलाई कसरी कम पाउँ लमनुपर्छ त ? साधारण सत्यको यथास्थितिको परिप्रेक्षबाट सोच्दाखेरि यी लोकधर्मका प्रतिभासहरू (ज्यिग्तेन् छ्योएक्यि नाङ् वा རྡོ་ལྷོ་མེད་ཀྱི་སྒྲུབ་པ་) वा संसारमा ६ ओटै इन्द्रियमा आभास हुने कुराहरू नित्य, स्थिर तथा स्थायी किञ्चित पनि छैनन्। त्यसकारण यस जीवनका विषयहरूप्रतिको आसक्तिको प्रतिपक्ष (ज्येन्पो གཤེད་པོ་) स्वरूप अनित्यको भावना गर्नुपर्छ।

अनित्यको भावना अत्यन्तै महत्त्वपूर्ण छ किनभने साधारणतया: अनित्य आदिको भावना गर्ने सन्दर्भमा गैर बौद्धधर्मावलम्बीहरूको विचारधारा अनुसार बौद्ध धर्मावलम्बीहरूको धर्म भनेको मनोबल कम पाउँ लैजाने वा मनोबल गिराउने, मनलाई खुसी हुन नदिने, उदास पार्ने खालको अवस्था सिर्जना गर्ने धर्म हो। गैर बौद्धधर्मावलम्बीहरूले बुद्धधर्मलाई त्यसरी नै चिनेका हुन्छन्। उनीहरूले यस प्रकारको सोच राख्नुको पछाडि के कारण होला भनी सोध्ने हो भने जवाफ यही दिन सकिन्छ कि अनित्य-भावना, त्यसपछि अनात्म-भावना अनि शून्यताको भावना, हो, बौद्धहरूले यस्ता भावनाहरू गर्ने भएर यसले मानिसलाई खुसी हुन नदिने, सधैं दुःखी र उदास बनाउने, मनोबल गिराउने खालको धर्मको रूपमा उनीहरूले चिन्छन् र त्यसो भन्छन् तर साँच्चै भन्ने हो भने वास्तविकता त्यस्तो हुँदै होइन।

अनित्य-भावना भनेको के हो भने, साधारणतया: वस्तु वा द्रव्य (डोय्यो དོ་སྒྲུབ་པོ་) स्वयंको अनित्यताको बारेमा भावना गरे पनि नगरे पनि कुनै कर छैन। तर जीवनमा भोगिने कुराहरूको सत्यको यथार्थ अवस्थिति कस्तो छ भन्ने कुरा जान्नुपर्छ। सत्यको यथार्थ अवस्थिति यही हो कि ती



कुराहरूमा सधैं ठुलै परिवर्तनहरू भइरहन्छन्। परिवर्तन त तिनीहरूको स्वभाव नै हो। त्यसलाई त्यही रूपमा जान्नुपर्छ अर्थात् यदि परिवर्तन हुन्छ भने परिवर्तन हुन्छ भनेर नै जान्नुपर्छ। त्यसरी जानेर पहिलेदेखि अहिलेसम्म यसरी (निरन्तर रूपमा) परिवर्तन हुँदै आएको छ वा भइरहेको छ (र भविष्यमा पनि हुनेछ) भन्ने किसिमको सोचाइ लिएर पहिलेदेखि नै तैयार भइ बस्यौं भने हामीलाई अलिकति पनि समस्या तथा दुःखहरू हुँदैन। त्यसरी सोचिरहने वा चिन्तन गरिरहने व्यक्तिलाई समस्या तथा दुःखहरू हुनै सक्दैनन्। सबैथोक परिवर्तन हुने भएर नै अनित्य छन्। त्यो नै यथार्थ हो। तर हामीले त्यो कुरा थाहा पाएनौं भने हामी आफ्ना लागि पहिले नै कुनै पनि तैयारीहरू गर्न नसक्ने हुन्छौं।

त्यसोभए, अनित्यताको भावना कसरी गर्नुपर्छ त ? यस विषयमा यहाँ व्याख्या गरिन्छ। बाह्य भाजनलोक तथा भित्री सत्त्वलोक, यी दुईको अनित्यताको बारेमा भावना गर्नुपर्छ।

ख.१.१ बाह्य भाजन लोकको अनित्यता : सर्वप्रथम बाह्य भाजनलोकको परिप्रेक्षमा कुरा गर्ने हो भने त्योसित सम्बन्धित अनित्यतालाई कसरी जान्न र बुझ्न सकिन्छ त ? यस प्रश्नको स्पष्ट उत्तरको लागि चार ऋतुका उदाहरण दिन सकिन्छ। चार ऋतुहरू निरन्तर परिवर्तनकै प्रवाहमा हुन्छन्। ग्रीष्म ऋतुमा बिछट्टै रमाइलो हुन्छ भन्ने सोचाइ मनमा आउँछ। हो, ग्रीष्म ऋतु रमाइलै छ तर त्यसमा हाम्रो ठुलो आसक्ति भएपछि के हुन्छ ? ग्रीष्म ऋतुमा ठुलो आसक्ति भयो भने हामीले सधैं ग्रीष्म ऋतु जस्तै भइरहोस् भनी सोच्छौं। त्यसरी सोच्यौं भने हामीलाई केही पनि फाइदा हुने छैन।

ग्रीष्म ऋतु बदलिएर शरद ऋतु आइपुग्छ। फेरि शरद ऋतु बदलिएर हिउँदे ऋतु आइपुग्छ। त्यसैगरी दिन र रातको पनि उदाहरण दिन

सक्छौं। दिन असाध्यै रमाइलो छ इत्यादि भन्ने खालको सोचाइमा हामी रम्यौं त्यहाँसम्म त ठिकै छ तर त्यसमा धेरै आसक्त भयौं भने केही लाभ हुने छैन किनभने परिवर्तन त हरबखत भइरहेकै हुन्छ। ती उदाहरणहरूबाट पनि जेसुकै भएपनि परिवर्तन भनेको निरन्तर प्रकृया हो भनी बुझ्छौं। बाह्य भाजनलोकको अनित्यताको सङ्क्षिप्त मेरो व्याख्या यही हो।

ख.१.२ भित्री सत्त्वलोकको अनित्यता : दोस्रो अर्थात् भित्री सत्त्वलोकको सन्दर्भमा भन्नुपर्दा युवावस्थाको कल्कलाउँदो उमेरमा (जीवन) अत्यन्तै सुखमय र रमाइलो हुन्छ तर, त्यो कुरकुरे वैंस पनि बिस्तारै बिस्तारै परिवर्तन भएर आखिर वृद्धावस्थामा नै परिणत हुने हो। त्यसकारण, यसमा अत्यन्तै आसक्त भयौं भने केही लाभ हुँदैन। अतएव संसारका यी जञ्जालहरूमा त्यति बिघ्न आसक्त भएनौं भने संसारका यी दुःखहरूरूपी नदी तरेर जान सकिन्छ। संसारका दुःखहरूबाट मुक्ति दिने मार्ग नै धर्मको मार्ग भएको हुँदा त्यो मार्गमा प्रविष्ट हुनैपर्छ। यो कुरा एकदमै महत्त्वपूर्ण छ। त्यो कारणले गर्दा सबैभन्दा पहिले सबै अनित्य छन् भन्ने कुरा जानुपर्छ। सबै अनित्य छन् भन्ने कुरा जान्यौं भने त्यो ज्ञानबाट अत्यन्तै ठुलो लाभ हुन्छ। कस्तो अत्यन्तै ठुलो लाभ हो त ? यस विषयमा भगवान् बुद्धले भन्नुभएको छ, “सर्वप्रथम (अनित्यले) धर्म अभ्यासका लागि अभिप्रेरणा दिने प्रत्ययको काम गर्छ।” अतः सबैभन्दा पहिलो अभिप्रेरक नै अनित्य हो र त्यसलाई त्यही रूपमा राम्रोसँग जान्यौं भने हामीले यो जीवनका विषयहरूमा त्यति बिघ्न आसक्ति राख्दैनौं। त्यसरी आसक्ति नराखेर सद्धर्मको अभ्यास गर्नुपर्छ। त्यस्तो खालको सोचाइले सबैभन्दा पहिले हामीलाई धर्म अभ्यास गर्नतिर अग्रसर तुल्याउने छ वा त्यसले धर्म अभ्यासका लागि अभिप्रेरकको काम गर्नेछ।

(पहिलो कुरा, सबैभन्दा पहिले वा सुरुसुरुमा अनित्यले एक किसिमको अभिप्रेरकको काम गर्दछ) भने दोस्रो कुरा, बिचमा यसले वीर्य अभ्यास गर्न हौस्याउने अङ्कुशको काम गर्दछ। अधिकांश मानिसहरू यस्तो सोच्छन्, “हामी धर्मदेखि प्रसन्न छौं र हाम्रो धर्ममा श्रद्धा पनि छ। ती भएर नै हामीमा धर्म अभ्यास गर्ने ठुलो रहर छ, चाहना छ। तैपनि किन हो कुन्नि ! हामीले धर्म अभ्यास गर्न सकिरहेका छैनौं।” त्यस्तो खाले सोचाइ आम मानिसमा रहेको पाइन्छ। त्यसै कारणले गर्दा यदि सुरुमै गहिरिएर अनित्यताको भावना राम्रोसँग गर्न सकियो भने साँच्चै त्यसले बिचमा वा अभ्यासको चरणमा वीर्य उत्साह जगाउने प्रत्ययको काम गर्ने छ। सद्धर्मको द्वारमा प्रवेश गरिसकेपछि हामीबाट वीर्यको अभ्यास नै भएन वा हुन सकिरहेको छैन भने पनि हामीले “ए, यस्तो अवस्थामा मैले अनित्यताको भावना गर्नुपर्छ।” भन्ने सोचेर अनित्यताको नै भावना गर्नुपर्छ। सबै अनित्य छन् भनी जान्नुपर्छ। अनित्यताको वास्तविक अर्थलाई बारम्बार चिन्तनमनन गर्नुपर्छ भने त्यसरी चिन्तन गरेको कारणले अभ्यासमा वीर्य (पराक्रम, जोशजाँगर, फुर्ती, लगनशीलता, मिहिनेत, परिश्रम, उद्योग आदि) जगाउन हामी सक्षम हुने छौं। त्यसपछि अन्तमा गएर हामीले फल (बुद्धत्व) प्राप्त गर्नको लागि पनि सहायकसिद्ध हुनेछ भनी बताइएको छ।

अनित्यताको भावना फल प्राप्तिको लागि सहायक हो भन्नाले कसरी बुझ्नुपर्छ भने हामीले साँच्चै धर्म अभ्यास गरेको फल हाम्रै हातमा पर्न आउने अवस्थाको सिर्जना यसैले गरिदिन्छ। त्यसमा कुरा यस्तो छ। अनित्यता राम्रैसँग जानेका छौं भने हामीले राम्रैसँग वीर्यको अभ्यास गर्न सक्छौं। वीर्यको अभ्यास राम्रो भयो भने फल पनि राम्रै प्राप्त हुने छ।

त्यसकारणले गर्दा कुनचाहिँ हेतु वा मूलका कारणले गर्दा

अन्तिम वा परम फलको प्राप्ति हुन्छ त ? अनित्य बोध हुनुपर्छ र त्यही बोधमा निर्भर भएरै त्यो परम फल प्राप्त हुने हो । त्यसकारण अनित्यताको चिन्तन तथा स्मरण गर्दा अत्यन्तै ठुलो लाभ (अनुशंसा) हुन जान्छ । अनित्यताको भावनामा भर परेर नै यस जीवनका जञ्जाल र संसर्गहरूप्रतिको आसक्तिलाई त्याग्न सकिन्छ ।

*ख.२ संसारका सुख वा सांसारिक सुखप्रतिको आसक्तिका प्रतिपक्ष अर्थात् संसारका दोषहरू तथा कर्म-फलको भावना*

ख.२.१ संसारका दोषहरूको भावना : यसका दुई भेद अर्थात् संसारका दोषहरूको भावना र कर्म हेतु फलको भावनामध्ये पहिलो संसारका दोषहरूको भावनाका बारेमा यसरी बुझ्न सकिन्छ । यस जीवनका विषयहरूमा आसक्त नभए पनि हामी सांसारिक सुखमा आसक्त हुन सक्छौं । सांसारिक सुखमा आसक्त भयौं भने धर्मको मार्गमा हिँड्ने क्रम बिचैमा काटिने छ । अर्थात् त्यो हिँडाइ बिचमै अवरुद्ध हुनेछ । संसारका विषयवस्तुहरूप्रति आसक्त भयौं भने हामीमा परम फल अर्थात् बुद्धत्व प्राप्तिको इच्छा नै रहने छैन । त्यति मात्र होइन सम्यक् मार्गको अभ्यास गर्ने इच्छा पनि नरहने हुन्छ । त्यसकारण संसारको सुखप्रति आसक्त नहुनका लागि के कस्ता हेतुहरू हामीले जान्नुपर्छ त ? त्यसका लागि हामीले संसारका दोषहरू तथा कर्म हेतु र फल थाहा पाउनुपर्छ । संसारका दोषहरू तथा कर्म हेतु र फलका बारेमा जानेर नै हामीले सांसारिक सुखप्रतिको आसक्तिलाई त्याग्न सक्छौं ।

त्यसमा संसारको दोष भन्नाले षड्गतिका दोषहरू हुन् । षड्गतिमा मनुष्य जुनी पनि पर्दछ । हामी जस्ता मनुष्य नै भयौं भने यहाँ कहिले सुखका अवस्थाहरू आउँछन् भने कहिले दुःखका अवस्थाहरू आउँछन् ।

मनुष्य जीवनमा त्यस्ता अवस्थाहरू धेरै नै आउँछन्। तैपनि दुःख उत्पन्न हुने मूल कारण अर्थात् समुदयका बारेमा हामी अनभिज्ञ हुन्छौं। “यदि व्यापार गरेर जीविका चलाए (पक्कै पनि) म सुखी हुनेछु (भन्टानेको थिएँ)। तर त्यो व्यापारबाट त कुनै पनि हालतमा जीविका नचल्दो रहेछ।” कसैकसैले त्यस्तो सोच्छन्। (उनीहरूको सोचाइमा जीवनमा सुख नआउनुको कारण व्यापारिक असफलता नै रहेछ।) कसैकसैले यस्तो सोच्छन्, “मेरो परिवार रत्तिभर पनि ठिक छैन। मेरो परिवारले मलाई धेरै नै समस्या र दुःखहरू दिइरहेको छ।” यस प्रकार हामीले आफूहरूलाई भएका समस्या र दुःखहरूको मूल कारणका रूपमा अरूलाई वा अर्कै कुनै कुरालाई मान्छौं तर वास्तवमा ती ‘अन्य’ कुराहरूको आधारमा दुःख उत्पन्न हुने हुँदै होइन।

त्यसोभए, दुःख उत्पन्न हुने आधार के हो त ? अहिले नै दुःखहरू उत्पन्न हुने तात्कालिक मूल कारण नभएपनि विघ्नवाधा, आपद् विपद्, समस्याहरू इत्यादि धेरै दुःखहरू त जीवनमा आइ नै रहन्छन्। दुःख संसारको लक्षण हो भन्ने कुरा मानिसहरूले सोच्दैनन्। उनीहरूको सोचाइमा तात्कालिक प्रत्ययले गर्दा नै दुःख उत्पन्न हुने हुन्। ती तात्कालिक प्रत्ययहरूलाई हटाउन सके दुःख त समूल नष्ट नै भएर जाने छ। यहाँ त्यस्तो सोचाइ जस्तो पटकै हुने होइन। वास्तविकता त्यस्तो होइन। उदाहरणार्थ, “मेरो परिवारमा छोरो छ, छोरी छे। उनीहरूकै कारण मैले धेरै नै समस्याहरूको सामना गरिरहनु परेको छ। उनीहरूलाई छोडेर हिँड्न सके मैले ठुलो सुख पाउने छु।” तर उनीहरूलाई त्यागेर अन्तै बस्न गए पनि समस्या र दुःखहरू त पहिलेजस्तै भोग्नु नै पर्ने छ। त्यो बाहेक त्यसले मुक्तिकै अवस्था चाहिँ (कुनै हालतमा पनि) ल्याइदिन सक्दैन। त्यसै कारणले गर्दा दुःख

र समस्याहरूबाट सदाका लागि मुक्ति नै पाउने हो भने हामीले यस संसारलाई नै परित्याग गर्न सक्नुपर्छ ।<sup>६</sup>

त्यसकारण, संसार उत्पन्न गर्ने वा सिर्जना गर्ने हेतु वा मूल नै चित्तभित्रका अविद्या र क्लेश हुन् । त्यसो भएको हुँदा ती अविद्या तथा क्लेशहरूलाई शोधन गर्ने कुरा अत्यन्तै महत्त्वपूर्ण छ । त्यस्तो शोधन प्रकृया अपरिहार्य छ । क्लेशहरू शोधन गर्नका लागि कुनचाहिँ प्रतिपक्षको खाँचो पर्दछ त ? प्रतिपक्षकै सन्दर्भमा भन्ने हो भने हामीले भित्री चित्तको ज्ञानलाई विकसित गर्दै लान सक्नुपर्छ । मुख्य कुरा चाहिँ, त्यो भित्री अवबोध र ज्ञानलाई उत्तरोत्तर अभिवृद्धि गर्दै लैजानका लागि वीर्यको अभ्यास गर्नुपर्छ अर्थात् ठुलो उत्साह जगाएर धर्म अभ्यासमा मिहिनेत गर्नुपर्छ ।

त्यसकारण, संसारका दोषहरूलाई जानेर संसारप्रतिको राग र आसक्तिलाई त्याग्न सकेको खण्डमा त्यसैमा निर्भर भएर धर्म साँच्चै नै मार्गमा परिणत हुन्छ भन्ने कुरा जान्न अत्यावश्यक छ ।

**ख.२.२ कर्म, हेतु र फलको भावना :** त्यसोभए, संसारका दोषहरूको मूल (हेतु) कहाँबाट आउँछ त ? संसारका दोषहरूको मूल भनेकै कर्म, हेतु र फलबाट उत्पन्न हुने हुन् । कर्म, हेतु र फल भन्नाले के हुन्, कस्ता हुन् ? यसलाई यसरी बुझ्न सकिन्छ । सुख र खुसी हाम्रै हुन् तर त्यो सुख र खुसी पहिलेको कर्मको कारण उत्पन्न भएका हुन् । हाम्रा दुःख पनि पहिलेकै कर्मको कारण उत्पन्न भएका हुन् । त्यस्तो उपदेश दिइन्छ ।

कर्म भन्नाले त्यस्तो हो जसमा हामीले केही गर्न सक्दैनौं । त्यसलाई शोधन गर्न सकिँदैन वा एकदमै कठिन हुन्छ । अधिकांश

मानिसहरू त्यसरी नै सोच्छन् तर वास्तविकता त्यस्तो होइन । कर्म, हेतु र फललाई हामीले यसरी बुझ्नुपर्छ । दुःखबाट मुक्त हुने सम्यक् उपाय छ । त्यस्तै सुख र खुसी प्राप्त गर्ने सम्यक् उपाय पनि छ । त्यसकारण सुखको प्राप्तिमा हाम्रै नियन्त्रण र स्वतन्त्रता छ भने दुःखको त्यागमा पनि हाम्रै नियन्त्रण र स्वतन्त्रता छ भनी उपदेश दिइएको छ । यी दुवै कुरा हाम्रै हातमा छन् ।

त्यस्तो हो भने त्यसका कारणहरू कसरी बताइएका छन् त ? यस विषयमा भन्नुपर्दा, आफ्ना दुःखहरू मुख्य रूपमा अरू कसैले बनाइदिएको र कुनै वस्तु जस्तो पदार्थले निर्मित भएको पक्कै पनि होइन । त्यस्तो हुँदै होइन । त्यसो भए ती दुःखहरू कसले बनाइदिएका हुन् त ? हामी स्वयंले दुष्कर्म सञ्चय गरेको, दुश्चिन्तन र दुष्चर्या गरेको कारणले गर्दा यस्ता दुःखहरूको सिर्जना भएका हुन् । त्यसो भएको कारणले गर्दा दुःखको मूल कारण केमा वा कोमा निर्भर छ त, त्यसोभए ? मुख्यतया : दुःखको मूल हामी स्वयंमै निर्भर रहेको हुन्छ अर्थात् त्यसको लागि हामी स्वयं नै जिम्मेवार छौं । दुःखको मूल वा हेतु ती अकुशल कर्महरू हुन् जसको सञ्चय गरेको फलस्वरूप आफैँलाई दुःख हुन्छ वा दुःख उत्पन्न हुन्छन् । त्यसकारण, हामीलाई दुःख नहोस् भन्ने चाहन्छौं भने हामी स्वयंले दुष्कर्म वा अकुशल कर्महरू सञ्चय गर्ने काम छोड्न सक्नुपर्छ । त्यस्ता संसारका दोषहरू तथा हेतु, कर्म र फलको अवस्थालाई सम्यक् रूपले जानेको वा बुझेको खण्डमा त्यसैको आधारमा साधारणतयाः मति धर्ममा लाग्छ । अनि विशेषतवरले धर्म मार्गमा परिणत हुँदै जान्छ ।

### ख.३ शमसुखप्रतिको आसक्तिको प्रतिपक्ष अर्थात् मैत्री-करुणाको भावना

हामीमा संसारबाट मुक्ति र निर्वाण तथा सर्वज्ञताको फल चाहने मति पक्कै पनि छ, नभएको होइन। तर पनि त्यस्तो अवस्था किन हामीले प्राप्त गर्न सकेका छैनौं त ? जवाफ : हामीमा अज्ञानता र भ्रान्ति छ। त्यो अज्ञानता र भ्रान्ति आफू एकलो व्यक्तिसित सम्बन्धित छ वा भनौं आफू एकलो व्यक्ति (म) भन्ने आलम्बनमा मात्रै केन्द्रित रहेको छ। त्यसले गर्दा नै परम सम्यक् फल (बुद्धत्व) प्राप्त गर्न सकेका छैनौं। त्यसकारण त्यो एक किसिमले हानि नै हो।

अरूको नभएर आफू एकलो प्राणीको मात्र स्वार्थ सिद्ध गर्न खोज्ने भएकोले नै त्यस्तो हानि हुन जान्छ। त्यसकारण त्यस्तो आफू एकलैको स्वार्थ वा स्वार्थपरायणतालाई चटककै त्याग्न आवश्यक छ। त्यस्तो स्वार्थ-परायणतालाई त्याग्न हामीलाई मैत्री र करुणाको खाँचो पर्दछ।

साधारणतया: हामीले सद्धर्मको अभ्यास गर्नुपर्छ र सद्धर्मको अभ्यास गर्दा के लाभ हुन्छ भन्ने कुरा पनि जान्नुपर्छ। त्यतिमात्र होइन, सद्धर्मको अभ्यास गर्ने उपाय के के छन् भन्ने कुरा पनि जान्नुपर्छ तर सद्धर्मको अभ्यास आफू एकलो व्यक्तिले (मात्र) गर्नुपर्छ, अरूले गर्दै पढ्ने भन्ने हो त ? सद्धर्मको अभ्यास आफू एकलै व्यक्तिले (मात्र) गर्नुपर्छ भन्ने होइन। त्यसो भए, कस्तो हो त ? हामीसँग सद्धर्मको बारेमा जति ज्ञान भएपनि त्यो ज्ञानले गर्दा हामीले एक किसिमको अभिभारा बहन गरिरहेका हुन्छौं वा भनौं त्यो ज्ञानले हाम्रो काँधमा जिम्मेवारी पनि थपिदिएको हुन्छ। सद्धर्मको अभ्यास नै गर्न नजानेका अन्य व्यक्तिहरूले धर्मको अवस्था (अभ्यास गर्ने तरिका) जान्न आवश्यक छ। धर्म अभ्यास नै गर्न नसकेकाहरूलाई धर्म अभ्यास गर्न सक्षम बनाउन आवश्यक छ। त्यसरी नै दुःखबाट मुक्त



नभएकाहरूलाई दुःखबाट मुक्त हुन सक्षम बनाउने, सुख नपाएर बसेकाहरूलाई सुख प्राप्त गर्न सक्षम बनाउने एक किसिमको जिम्मेवारी हाम्रो काँधमा हुन्छ। वास्तवमा हुनुपर्ने त्यस्तो पो हो। त्यस्तो नभएर आफू एकलो व्यक्ति वा प्राणीका बारेमा वा लागि मात्र सोच्ने गरियो भने विवेकशील प्राणी नै ठहरिन्न, अर्थात् अज्ञानता नभएको प्राणी नै ठहरिन्न। त्यस्तो चर्यालाई त अत्यन्तै अशिष्ट चरित्र र दुष्चर्या नै भन्दा हुन्छ। उदाहरणार्थ, (ज्यान जोगाउनका लागि) डुङ्गा चढेर नदी पारि पुग्नुपर्ने अवस्था आयो भने सबैभन्दा पहिले आफ्नी पत्नी, छोराछोरीहरू र साथीहरूकै उद्धार गर्ने जुक्ति लगाउनु पर्छ नि। उनीहरूलाई वारि त्यतिकै छोडेर सबैभन्दा पहिले आफ्नो नै उद्धार गर्ने जुक्ति लगाइयो वा आफू नै पहिले पारि जान खोजियो भने त्यो पक्कै पनि राम्रो हुँदैन। त्यसरी नै दुःखबाट मुक्त हुने उपाय जे सुकै भएपनि हामीले अभ्यास गर्ने बेलामा (यस्तो सोच्नुपर्छ), “अरूहरूले पनि त्यसरी नै सुख प्राप्त गर्नुपर्छ जसरी मैले प्राप्त गर्छु। अरू पनि संसारबाट मुक्त हुनुपर्छ। दुःखबाट छुटकारा पाउन सक्षम हुनुपर्छ। विघ्न अन्तराय र प्रतिकूल अवस्था (क्येन् डेन्) हरूबाट छुटकारा पाउन सक्षम हुनुपर्छ तर ती सब कुराका लागि के गर्नुपर्छ, कसो गर्नुपर्छ भन्ने केहीपनि थाहा छैन विचाराहरूलाई ! त्यसकारण मैले उनीहरूको उचित सहयोग गर्नुपर्छ, उद्धार गर्नुपर्छ। मैले यहाँ आफ्नो बारेमा मात्रै वा आफ्नो स्वार्थको बारेमा मात्रै सोचेर बसे भने त्यो त पक्कै पनि दुष्चर्या हुन जानेछ। त्यसकारण अरूहरूको मदत गर्नुपर्छ।

अरूहरूको मदत गर्न वा उद्धार गर्नका निमित्त कसरी भावना गर्नुपर्छ त ? सबै प्राणीहरू सुखले युक्त होउन् भन्ने चाहना राख्ने मैत्री र सबै प्राणीहरू दुःखबाट मुक्त होउन् भन्ने चाहना राख्ने करुणाको भावना गर्नुपर्छ।

मैत्री र करुणाको किन भावना गर्नुपर्छ त ? मैत्री र करुणाको भावना गर्नुको पछाडि कारण यो हो । उदाहरणको लागि पशुपन्छी र भुसुनादेखि लिएर सबै प्राणीहरूको सोचाइ एउटै हो । हामीलाई सुखको चाहना भएजस्तै जोसुकै प्राणीले पनि सुख प्राप्तिकै चाहना राख्ने हो । उनीहरूको मतिले सुख नै चाहेको हुन्छ । आखिर सुख चाहने मति त सबै प्राणीहरूको समान नै हुन्छ । यस्तो नभएर मानवजातिका मात्रले सुख चाहने, गैरमनुष्य जातिकाहरूले दुःख चाहने भन्ने हुँदैन । त्यसैले गैर मानव जातिहरूमा “म दुःख चाहन्छु” भन्ने खालको प्राणी कोही पनि हुँदैन । त्यस्तो प्राणी कुनै पनि हालतमा हुन सक्दैन । त्यसकारण चित्तधारी सत्त्व (प्राणीहरू) सबैले सुख नै चाहन्छन् र दुःख चाहँदैनन् । अर्थात् सबैले दुःखबाट मुक्ति नै चाहन्छन् । सुख चाहनुमा र दुःख नचाहनुमा वा दुःखबाट मुक्ति चाहनुमा सबै प्राणीहरू समान नै छन् । त्यस्तो सुख प्राप्तिको चाहना गरिन्छ, जुन सुखमा अलिकति पनि कमी नहोस्, जुन सुख सबै पक्षबाट वा सबैतिरबाट सम्पूर्ण होस्, जुन सुख सम्पद् नै होस् । यहाँ सम्पद्को अर्थ पनि सबैतिरबाट पूर्ण र कुनै पनि खोट वा दोष नभएको वा कमी नभएको भन्ने नै हो । हो, सबैले त्यस्तो सुख चाहन्छन् । त्यो बाहेक कसैले मलाई सुख चाहिन्छ भनी सोच्ने र कसैले मलाई सुख चाहिँदैन भनी सोच्ने भन्ने हुँदैन । त्यस्तो कदापि किमार्थ हुँदैन । दुःखबाट छुटकारा चाहनेहरूमा पनि सम्पूर्ण दुःखको निवारण होस् भन्ने चाहनासहितको मनसाय नै हुन्छ । त्यो बाहेक कसैले दुःखबाट मुक्ति चाहने र ‘दुःख भए पनि नभए पनि मलाई केही फरक पर्दैन’ भनी सोच्ने कोही पनि हुँदैन । त्यसै कारणले गर्दा हामीले सबै सत्त्व (प्राणीहरू) प्रति मैत्री र करुणा राख्ने भावना गर्नुपर्छ ।

### ग. सारांश

सारांशमा साधारणतया: धर्म मार्गमा परिणत हुने प्रकृत्यामा बाधा वा अवरोध पुऱ्याउने कुरा नै तीन आसक्तिहरू हुन्। ती तीन आसक्तिहरूलाई परित्याग गराउने प्रतिपक्ष भनेकै अनित्यताको भावना, संसारका दोष तथा हेतु, कर्म र फलको भावना र मैत्री करुणाको भावना हुन्। यी तीन भावनाहरूको अभ्यास गरेमा मार्गमा नलागेको व्यक्ति धर्म मार्गमा लाग्छ। त्यसरी नै मैत्री करुणाको भावना गर्ने बेलामा साधारणतया: सद्धर्म प्राप्त नभएकाहरूलाई सद्धर्म प्राप्त गर्न सक्षम तुल्याउनुपर्छ। त्यसरी नै फल प्राप्त नभएकाहरूलाई फल प्राप्त गर्न सक्षम तुल्याउनुपर्छ तर जसलाई मानिस वा मनुष्य भनिन्छ, त्यो मानिस पनि परिपक्व (पाकेको) वा अपरिपक्व (काँचो) इत्यादि हुन्छन् भने जस्तै विभिन्न प्रकारको हुन्छ। उदाहरणको रूपमा कुनै फललाई नै लिन सकिन्छ। फल सबै खान योग्य नै हुन्छन् भन्ने हुँदैनन्। यदि फल पाकेको छ भने त्यो फललाई खान सकिन्छ तर फल पाकेको छैन भने खान सकिँदैन वा कठिन हुन्छ।

त्यही उदाहरण अनुरूप कोही कोही मानिसहरूले सद्धर्ममा तुरुन्तै श्रद्धा राख्दछन्। श्रद्धा उत्पन्न भएको कारणले उनीहरूले लाभहरू पनि ठुलै पाउँछन्। पुनः कोही कोही मानिसहरूको चित्तसन्तति परिपक्व नभएको कारणले नै (उनीहरूको निम्ति) धर्म गर्नुपर्छ।<sup>१०</sup> यो धर्म नै (उनीहरूको लागि) राम्रो हुन्छ भन्नुको अर्थलाई यसरी बुझ्नुपर्छ। कोही कोही मानिसहरू एकदमै रिसाहा पनि हुन सक्छन्। उनीहरूलाई तत्कालै कर गरेर वा जबरजस्ती सम्झाएर बुझाएर तह लाउने काम गरिँदैन। सबैभन्दा पहिले चित्त सन्तति परिपक्व नभएका त्यस्ता व्यक्तिहरूको चित्त सन्ततिलाई नै परिपक्व पार्नुपर्छ।

भगवान् सम्यक्सम्बुद्धले पनि सबै प्राणीहरूप्रति अनुकम्पा राख्नुहुन्थ्यो, तर पनि सबैभन्दा पहिले उनीहरूको चित्तलाई परिपक्व पार्ने काम नै गर्नुभयो । त्यसपछि उनीहरूको चित्त बिस्तारै बिस्तारै क्रमैसँग परिपक्व हुँदै जाने बित्तिकै सत्त्वार्थक्रिया गर्न थाल्नुभयो । ठिक त्यसरी नै हामीले पनि सत्त्वार्थक्रियामा मिहिनेतपूर्वक काम गर्ने बेलामा परिपक्वता र अपरिपक्वता बिचको फरक जान्न आवश्यक छ ।

## २.३ मार्गले भ्रान्ति नाश गर्नु

तेस्रो शीर्षक 'मार्गले भ्रान्ति नाश गर्नु' हो । यसका पनि दुईटा भेद छन् :

२.३.१. मार्ग कसरी भ्रान्तिनाशक हो भन्ने विषयमा निर्देश

२.३.२. भ्रान्ति नाश गर्ने उपायस्वरूप बोधिचित्तको भावना कसरी गर्ने भन्ने बारेमा व्याख्या

### २.३.१ मार्ग कसरी भ्रान्तिनाशक हो भन्ने विषयमा निर्देश

अब मार्गले भ्रान्ति नाश गर्ने बारेमा बताउँदै छु । मार्गले भ्रान्तिलाई नाश गर्ने कुराको अर्थ के हो ? यसलाई यसरी बुझ्न सकिन्छ । हामीले धर्म अभ्यासमार्फत परम फल हासिल गर्छौं । त्यसरी परम फल हासिल गर्ने हामीहरूको मार्ग गलत, छली वा भ्रामक हुनु हुँदैन । हामीले सम्यक् मार्गमा प्रवेश गरेर अभ्यास गर्नुपर्छ । मार्गमा प्रवेश गरेर के फल पाउनु पर्छ त भन्ने प्रश्नको जवाफमा मार्गमा प्रवेश गरेर फल बुद्धत्व प्राप्ति गर्नुपर्छ भन्न सकिन्छ । बुद्धत्व वा बुद्धपद भनेको पनि कुनै अर्कै नयाँ नौलो ठाउँमा गएर प्राप्त गर्ने कुरा होइन । बुद्धत्वलाई त्यसरी अर्थ्याउने होइन । बुद्धत्वलाई त यसरी बुझ्न सकिन्छ । आफ्नो चित्तको भित्री गहिराइमा रहेका दोष रूपी मलहरूलाई त्याग्न सक्नुपर्छ । ती दोषरूपी मलहरूलाई त्यागेको आधारमा आफ्ना गुणहरू तथा ज्ञान पक्षलाई उत्तरोत्तर वृद्धि गर्दै लगिन्छ । ती कुराहरूलाई वृद्धि गर्दै लगेर अन्ततोगत्वा बुद्धत्व नामक परम फल प्राप्त गर्नुपर्छ, तर बुद्धत्व प्राप्त गर्नका लागि सबैभन्दा मुख्य र महत्त्वपूर्ण कुरा भनेकै आफ्नै चित्तको ज्ञानलाई विस्तार गर्दै लानु हो र लानैपर्छ । ज्ञानलाई विस्तार गर्दै

लानका लागि दोष पक्ष याने कि क्लेश तथा अविद्याहरू सबैलाई नाश गर्नुपर्छ । अझ तीमध्ये पनि मूल अविद्यालाई नै नाश गर्नुपर्छ । त्यो मूल अविद्यालाई कसरी नाश गर्न सकिन्छ त ? पहिले अविद्या भनेको के हो भन्ने बारेमा नै बुझौं । साधारणतया: चित्तको स्वभाव, धर्मताको यथास्थिति तथा सत्यको यथास्थिति नजान्ने भ्रान्ति नै अविद्या हो भनी बताइएको छ । मार्गको भावनामार्फत त्यो भ्रान्तिबाट मुक्ति पाउनुपर्छ । त्यही कारणले गर्दा मार्गलाई भ्रान्तिनाशकको रूपमा अर्थात् अनुपेक्षित ।

### २.३.२ भ्रान्ति नाश गर्ने उपायस्वरूप बोधिचित्तको भावना कसरी गर्ने भन्ने बारेमा व्याख्या

यसका पनि दुई भेद छन् : क. परमार्थ बोधिचित्तको सङ्क्षिप्त निर्देश र ख. संवृत्ति बोधिचित्तको विस्तृत व्याख्या

#### क. परमार्थ बोधिचित्तको सङ्क्षिप्त निर्देश

मार्गले भ्रान्ति नाश गर्ने सन्दर्भमा मुख्यतया: कुनचाहीँ उपायद्वारा भ्रान्तिलाई नाश गर्नुपर्छ भन्ने (विषयमा व्याख्या यस प्रकार रहेको छ ।) साधारणतया: बोधिचित्त पनि दुई प्रकारका हुन्छन्, यथा - संवृत्ति बोधिचित्त र परमार्थ बोधिचित्त नै दुई प्रकारका बोधिचित्त हुन् । तीमध्ये मुख्य रूपमा परमार्थ बोधिचित्तको अभ्यासद्वारा क्लेश तथा भ्रान्ति इत्यादिलाई नष्ट गर्न सकिन्छ । त्यसले उपायको काम गर्दछ ।

त्यसो भए, परमार्थ बोधिचित्त भनेको के हो भन्ने प्रश्नको सन्दर्भमा, सबैभन्दा पहिले सबै धर्महरूको यथास्थिति वा यथार्थ अवस्थिति (ति: नेलुग), सत्यको यथास्थिति र हाम्रो चित्तको यथास्थिति जस्तो छ त्यस्तै रूपमा चिन्नुपर्छ; अनि बिचमा, तिनलाई बोध गर्नुपर्छ;

अन्तमा तिनलाई साक्षात्कार गरेर फल प्राप्त गर्नुलाई नै परमार्थ बोधिचित्तोत्पाद भनिन्छ ।

### ख. संवृत्ति बोधिचित्तको विस्तृत व्याख्या

दोस्रो, संवृत्ति बोधिचित्तको विस्तृत व्याख्याका सन्दर्भमा भन्नुपर्दा यसका पाँच भेद छन् : संधि, संवृत्ति बोधिचित्तको आश्रयका रूपमा शरणगमनको शिक्षा ग्रहण गर्नु पर्ने बारेमा उपदेश, संवृत्ति बोधिचित्तको भावना गर्ने विधिका बारेमा स्पष्ट निर्देश, बोधिचित्तको मुख्य शिक्षाका रूपमा षड्पारमिताको शिक्षा ग्रहण गर्नु पर्ने बारेमा उपदेश र सारांश ।

पहिलो अर्थात् संधि : त्यस्तो प्रकारको परमार्थ बोधिचित्त लाभ गर्नका लागि आदिकर्मिक साधक (सुरुसुरुका साधक) ले क्रमैसँग अभ्यास गर्दै लानुपर्छ । तदनुसार सबैभन्दा पहिले संवृत्ति बोधिचित्तमा नै प्रवेश गर्नुपर्छ । भन्नुको अर्थ संवृत्ति बोधिचित्तको नै अभ्यास गर्न थाल्नुपर्छ । त्यसकारण, गम्पोपाका चार धर्महरू (दागपो छ्योय् शिह) अन्तर्गत के प्रमुख कुरा देखाइएको छ (भन्ने कुरा तलका व्याख्याबाट थाहा पाउन सकिन्छ ।)

गम्पोपाका चार धर्महरूको व्याख्यामा संवृत्ति बोधिचित्त र परमार्थ बोधिचित्तमध्ये संवृत्ति बोधिचित्तलाई नै अलि महत्त्वका साथ दर्शाइएको छ । परमार्थ बोधिचित्त भनेको संवृत्ति बोधिचित्तमा आश्रित भएर नै उत्पन्न हुने हुन् । त्यसैले संवृत्ति बोधिचित्तलाई धेरै महत्त्व दिइएको हुन्छ । (किनभने) पृथग्जनहरूले सबैभन्दा पहिले संवृत्ति बोधिचित्तका बारेमा नै जान्न आवश्यक छ । त्यसोभए संवृत्ति बोधिचित्तको सार चाहिँ के हो त ? संवृत्ति बोधिचित्तको आश्रय के हो जसका विषयहरूलाई मार्गद्वारा भ्रान्ति नाश गर्दै लाने समयमा बताइन्छन् ?

दोस्रो, संवृत्ति बोधिचित्तको आश्रयका रूपमा शरणगमनको शिक्षा ग्रहण गर्नु पर्ने बारेमा उपदेश : संवृत्ति बोधिचित्तको आश्रयको रूपमा सबैभन्दा पहिले के बताइएको छ ? सबैभन्दा पहिले आश्रयको रूपमा शरणगमनका बारेमा नै बताइएको छ । तीन प्रकारका रत्न स्थानहरूमा शरण लिने (त्रिशरणगमन) तथा त्रिरत्नमा कसरी शरण लिने अर्थात् त्रिशरणगमनका तरिकाका बारेमा बताइएको हुन्छ ।

साधारणतया: बौद्धहरूको धर्म अभ्यास शरणगमनका संवरहरूमा नसमेटिने भन्ने कुरै आउँदैन । त्यसरी नै बुद्धधर्मको द्वारमा भर्खर प्रवेश गर्दाको समयमा पनि ती शरणगमनका संवरहरू नै आउँछन् । त्यसो भएको हुँदा दाग्यो अर्थात् गम्पोपाका चार धर्महरूमध्ये सबैभन्दा मुख्य विषयका रूपमा शरणगमनका संवरहरूको रक्षालाई विशेष जोड दिएर नै दर्शाइएको हुन्छ ।

साधारणतया: केवल भगवान् बुद्धको धर्मको द्वारमा प्रवेश गर्दा मात्र पनि शरणगमनको संवर प्राप्त हुन्छ । त्यसमा यस्तो बताइएको हुन्छ । भगवान् बुद्धको शरणमा गएपछि अन्य शरण खोज्नु हुँदैन । भगवान् बुद्धको शरणमा जाने विधि चाहिँ यस्तो छ । मार्ग देखाउने शास्ताका रूपमा विचार गरेर शरणमा जानु नै शरणगमनको विधि हो । ती शास्ताको शरणभन्दा अर्कैको शरण खोज्न आवश्यक नहुनुको पछाडि के कस्तो कारण छ त भन्ने प्रश्नको जवाफ यसरी दिन सकिन्छ ।

साधारणतया: प्राणीहरू बौद्ध भएपनि नभएपनि केही फरक पर्दैन । जसलाई धर्म भनिन्छ त्यसले ती सारा प्राणीहरूको हित हुन्छ र व्यक्तिगत रूपमा पनि हित हुन्छ । अझ व्यक्तिगत रूपमा त विशेष खालकै हित हुन्छ । तैपनि मार्गमा हिँड्दा वा यात्रा गर्ने



समयमा राम्रो बाटो देखाउने व्यक्तिको खाँचो पर्दछ । हुनुपर्ने त्यो हो तर त्यसो नभएर हामीलाई धेरै मार्ग देखाइयो भने हामी गन्तव्यसम्म पुग्न सक्दैनौं । त्यति मात्र हो र, त्यस्तो पाराले हामीले धेरै नै कठिनाइहरूको पनि सामना गर्नु पर्दछ । उदाहरणको रूपमा नै भन्ने हो भने कुनै व्यक्तिलाई संयुक्त राज्य अमेरिकाबाट नेपाल फर्केर आउनु छ । ऊ चीनको क्वान्चाउ भएर पनि नेपालमा अवतरण गर्न सक्छ अथवा, कोरियाको सिउल भएर पनि नेपाल फर्कन सक्छ । ती ठाउँमध्ये जुन ठाउँ भएर आएपनि खासै फरक पर्दैन, तर एउटा मार्गदर्शकले एउटै मात्र मार्ग नदेखाइकन एकजनाले तिमी क्वान्चाउ भएर नेपाल फर्के राम्रो भन्छ । अर्कोले चाहिँ सिउल भएर जाँदा बेस भन्छ । त्यसरी दुई थरी कुरा सुनेर त्यो यात्रीको हालत चाहिँ के हुने हो ? त्यो यात्री दुवैको कुरामाथि विचार गर्दै बस्यो भने कहाँबाट जानुपर्छ भन्ने कुराको छिनोफानो नै गर्न नसक्ने अवस्थामा पुग्छ । त्यसपछि अन्योलग्रस्त भएर उसले ठुलै कठिनाइको सामना गर्नुपर्ने हुन्छ । विचारा, उसले उनीहरूको दोधारे कुराले गर्दा व्यर्थैमा रनभूल्लमा परेर धेरै दुःख पाउनुपर्ने हुन्छ । त्यसै कारणले गर्दा बौद्धहरूले धर्म अभ्यास गर्ने बेलामा सम्यक्सम्बुद्ध भगवान् जस्तो शास्ता नै धर्मको मार्गदर्शक भएको कारणले उहाँको अनुसरण गरेपछि अर्को शास्ताको आश्रय लिँदैनन् र अरूको शरण पनि खोज्दैनन् । यस्तो कुरा बताइएको हुन्छ ।

तत्पश्चात्, सद्धर्मको शरणमा गइन्छ । सद्धर्मको शरणमा गएपछि के के गर्नुपर्छ त ? साधारणतयाः आफू, अरू वा जोसुकैको पनि ठुलो कल्याण सिद्ध हुनु नै धर्मको सार हो । अरूको हानि हुने कुरा धर्म होइन । त्यो धर्म विपरीत हो । त्यसकारण, धर्ममा शरण लिएपछि सत्त्वहरूको हानि हुने कामलाई त्याग्नुपर्छ । त्यसमा पनि सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कुरा के हो ? यहाँ सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कुरा भनेकै समुत्थान

(आशय, कुन्लोङ्) हो । हो, बौद्धहरूको धर्म अभ्यास मुख्यतयाः समुत्थानमा निर्भर हुन्छ । अरूको हानि गर्ने समुत्थान वा आशय नै मनमा पैदा भए अर्कै कुरा । त्यो त धर्म विपरीत नै हो । तर प्राकृतिक रूपमा (कुनै काम गरिरहँदा, नचाहँदा नचाहँदै) दुर्घटनावश अरूको हानि हुन गयो वा त्यस्तै घटना घट्यो भने त्यति मात्रले धर्म विपरीत गएको ठहरिँदैन । त्यस कारणले गर्दा धर्ममा शरण लिइसकेपछि अन्य सत्त्वहरूको हानि तथा हिंसा गर्ने वा हुने काम सबैलाई त्याग्नुपर्छ भनी बताइएको हुन्छ ।

त्यसपछि, सङ्घको शरणमा गएपछि बेधर्मी मित्रहरूको सङ्गत र उनीहरूसितको संसर्ग त्याग्नुपर्छ । उनीहरूको सङ्गतलाई त्यागेर धर्म अनुकूल चर्या गर्ने मित्रहरूको मात्र सङ्गत गर्नुपर्छ । त्यस्तो किन त ? किनभने हाम्रो धर्म अभ्यासमा उत्तरोत्तर प्रगति हुँदै जानुपर्छ, अभिवृद्धि हुँदै जानुपर्छ । जहाँसम्म धर्म अभ्यासमा उत्तरोत्तर वृद्धि हुँदै जाने कुराको सन्दर्भ छ, धर्म अभ्यासको उत्तरोत्तर वृद्धि त आफ्नै मनमा निर्भर हुने कुरा हो । त्यो नै सबैभन्दा मुख्य र महत्त्वपूर्ण कुरा हो, तर यदाकदा त्यो कुरा मित्रहरूमा पनि निर्भर हुने गर्छ । त्यही कारणले गर्दा धर्म अनुकूल व्यवहार गर्ने वा चर्या गर्ने मित्रसितको सत्सङ्गत एकदमै आवश्यक हुन्छ भनी बताइएको हुन्छ ।

ठिक त्यस्तै प्रकारले शरणगमनको संवर ग्रहण गरेर त्यसको अभ्यास गर्नुपर्छ । त्यो सन्दर्भमा भन्नुपर्दा, भगवान् बुद्धको शरणमा गइसकेपछि भगवान् बुद्धप्रति आदर भाव राखिन्छ । धर्मको शरणमा गएपछि धर्मप्रति आदर भाव राखिन्छ । त्यस्तै सङ्घको शरणमा गइसकेपछि सङ्घप्रति आदर भाव राखिन्छ । यसरी तीन प्रकारको आदरभावका बारेमा बताइएको हुन्छ । किन आदरभाव राख्नुपर्छ त ? किनभने यी बाहेक अन्य कुनै पनि उपाय र मार्गद्वारा मोक्ष प्राप्त गर्न

नसकिने भएको भएर यिनको ठुलो शक्ति छ र आवश्यकता पनि ठुलै छ। बुद्ध, धर्म र सङ्घका रूपमा यी तीन प्रकारका रत्नहरूले हाम्रो लागि मोक्षदायी काम गर्न सक्दछन्। त्यसकारण त्रिरत्न अन्य साधारण वस्तु जस्ता होइनन्। यी त अत्यन्तै पवित्र, महत्त्वपूर्ण एवं विशिष्ट हुन्। त्रिरत्नलाई त्यही रूपमा जान्नु पर्छ। जानेर तीमाथि श्रद्धा र आदरभाव जगाउनुपर्छ।

त्यस्तै प्रकारले साधारणतया: बुद्ध भन्नाले धर्मचक्रप्रवर्तक बुद्ध भगवान् हुन् भने धर्म चाहिँ हामीले अभ्यास गर्नुपर्ने भावनामयी अभ्यासका विषयहरू हुन्। त्यस्तै सङ्घ भन्नाले चाहिँ आर्य सङ्घका रूपमा बुझिन्छ। ती सबै भएर पनि अहिले हामीले भगवान् बुद्धलाई प्रत्यक्ष देख्न सक्दैनौं, तर प्रत्यक्ष भेट्न सकिने र देख्न सकिने भनेको त भगवान् बुद्धका शरीर आश्रय अर्थात् प्रतिमाहरू हुन्। हो, (जीवित कायधारी) साच्चैको बुद्ध नभएपनि भगवान् बुद्धको प्रतिमा त्यस्तो विषय (object) हो जसलाई साँच्चिकैको बुद्ध समान नै हेरेर भावना गरिन्छ र श्रद्धा जगाइन्छ।

त्यसपछि सद्धर्मको सन्दर्भमा भन्ने हो भने लिपिबद्ध गरिएका ती बुद्धवचनहरूलाई पाठ गरिन्छ र अध्ययन गरिन्छ वा ती बुद्धवचनहरूमा शिक्षित भइन्छ। अतः सद्धर्मको अर्थलाई आफूले जान्न बुझ्न सकिन्छ। त्यसैले वाक् को आश्रय भनेकै बुद्धवचनका ग्रन्थहरूको ठेली हुन्।

त्यसपछि सङ्घको सन्दर्भमा भन्नुपर्दा सद्धर्मको अभ्यास गर्ने आर्य सङ्घ तेस्रो रत्न हो। यी तीनलाई नै वास्तविक त्रिरत्नका रूपमा चिन्तन गरिन्छ। यसरी चिन्तन गरेर तिनमा श्रद्धा, विश्वास र आदर जगाउनुपर्छ।

साधारणतया: ग्रन्थहरू र भगवान् बुद्धको प्रतिमालाई एकदमै

पवित्र वा पावन आश्रयका रूपमा मानिन्छ वा मान्नुपर्छ । किनभने बुद्धको काय आश्रय वा प्रतिमामा जुन शक्ति हुन्छ त्यो अरूको जस्तो होइन वा त्यसलाई अरूको शक्तिसित दाँज्न मिल्दैन । बुद्धको प्रतिमामा कस्तो शक्ति हुन्छ त ? बुद्धको प्रतिमा अन्य सामान्य वस्तुजस्तो होइन । बुद्धको प्रतिमालाई दर्शन गरेको कारण बिस्तारै बिस्तारै हाम्रो मनमा तीन प्रकारका श्रद्धाहरू जस्तै संप्रत्यय श्रद्धा, अभिलाष श्रद्धा र प्रसाद श्रद्धा मनमा उत्पाद हुन्छ वा पैदा हुन्छ । श्रद्धा मनमा उत्पन्न भएको कारणले गर्दा मैत्री र करुणा उत्पन्न हुने शक्ति पनि पैदा हुन थाल्छ ।

त्यस्तै प्रकारले सद्धर्मका अक्षरहरू भएका ग्रन्थहरूमा आश्रित भएर आफ्नो चित्तमा गुणहरू उत्पन्न गर्न सकिन्छ । त्यस्तै दोषहरूलाई पनि त्याग्ने शक्ति पैदा हुन्छ । त्यसकारण, काय धातु अथवा प्रतिमा र बुद्धवचनका शब्दहरूलाई सामान्य वस्तुका रूपमा हेर्न मिल्दैन । तिनलाई त विशिष्ट द्रव्यका रूपमा लिएर श्रद्धा तथा आदर गर्नुको साथै अत्यन्तै पावन आश्रयका रूपमा पनि चिन्तन गर्नुपर्छ ।

यस प्रकार शरणगमनका अनेक संवर-शिक्षाहरूमध्ये महत्त्वपूर्ण शिक्षा निषेधका शिक्षाहरू हुन् । निषेधनीय शिक्षाहरू तीनओटा हुन्छन् भने प्रतिपत्ति शिक्षा पनि तीनओटै हुन्छ । दुइटै प्रकारका शिक्षाहरूलाई जोडेर जम्मा ६ ओटा शिक्षाहरूको पालना गर्नुपर्छ ।<sup>८</sup>

*तेस्रो, संवृत्ति बोधिचित्तको भावना गर्ने विधिका बारेमा स्पष्ट निर्देश :* यस प्रकार शरणगमनका संवरहरूको एकदमै उत्कृष्ट आधारभूत आश्रय भएपछि त्यसमाथि अथवा त्यस आधारमा टेकेर बोधिचित्तोत्पाद गर्नुपर्छ । बोधिचित्त भन्नाले मुख्यतया: के बुझिन्छ ? बोधिचित्तलाई मुख्यतया: करुणाका रूपमा बुझ्दा हुन्छ । अर्को शब्दमा भन्ने हो भने दुःख र दुःखको हेतुले युक्त सारा प्राणीहरूका ती दुःख र दुःखका

हेतुहरूबाट रक्षा वा उद्धार गर्ने इच्छा निहित भएको करुणालाई नै बोधिचित्तका रूपमा बुझ्नुपर्छ। त्यस प्रकारको करुणा हामीमा छ भने त्यो करुणाको कारणले गर्दा बिस्तारै बिस्तारै बुद्ध र बोधिसत्त्वका गुणहरू हाम्रो आफ्नो चित्तमा उत्पाद हुन्छन्। त्यति मात्र नभएर त्यसले गर्दा अन्य प्राणीहरू सबै पनि वृहत् तवरले लाभान्वित हुने अवस्था आउने भएर सत्त्व (प्राणी) हरू उपर करुणा जगाउनु पर्छ। करुणा भन्नाले यस्तो मानसिक भाव हो जसलाई अत्यन्तै महत्त्वपूर्ण, पावन र विशिष्ट दर्जामा राखिन्छ। तर करुणा यस्तो हुनुपर्छ जसलाई विशिष्ट वा विशेष प्रकारको करुणा भन्न सकिन्छ जसले गर्दा स्व र पर अथवा आफू, अरू सबैलाई कल्याणै कल्याण होस्, सबैको हितै हित होस्। त्यस्तो उत्कृष्ट करुणाको खाँचो छ। त्यस्तो नभएर मूक वा मन्दबुद्धि खालको करुणा हो भने त्यसले आफ्नो र अरूको पनि अहित नै गर्छ। त्यस्तो खाले दयामाया कुनै पनि हालतमा लाभदायक हुँदैन। त्यस्तो प्रकारको करुणा पनि जान्न सक्छ। त्यस्तो प्रकारको करुणा जाग्यो भने त्यसबाट त्यति लाभ हुँदैन। त्यसकारण, बोधिचित्तले युक्त करुणा भन्नाले कस्तो करुणा हुनुपर्छ भन्ने प्रश्नमा यस्तो भन्न सकिन्छ। करुणाको साथमा प्रज्ञा भएको, करुणाको साथमा विश्वास भएको र सम्पूर्ण वस्तुस्थिति (वस्तुको वास्तविक वा यथार्थ अवस्थिति) सम्यक् रूपमा जानेको चलाक किसिमको करुणा उत्पाद गर्नुपर्छ। यदि त्यस्तो नभएर वस्तुस्थिति (नेलुग) राम्रोसँग नजानेको करुणा भएमा ठुलो लाभ कुनै पनि हालतमा हुने छैन। त्यसकारण, प्रज्ञाले युक्त करुणालाई बोधिचित्त भनिन्छ। त्यस्तो खालको करुणा एकदमै महत्त्वपूर्ण हुन्छ।

करुणा नभएको मान्छे वा सत्त्व कोही हुँदैन। करुणा जोसुकैसँग पनि हुन्छ, तर त्यो करुणामा कस्तो दोष हुन्छ भन्दाखेरि त्यस्तो करुणा पक्षपाति हुने गर्छ। ठुलो दोष भनेकै त्यही हो। अर्थात् जो व्यक्ति आफ्नो

पक्षमा हुन्छ त्यो व्यक्ति उपर करुणा राख्ने तर जो व्यक्ति आफ्नो पक्षमा हुँदैन, त्यो व्यक्ति उपर करुणा नराख्ने, हो, त्यस्तो खालको करुणा नै पक्षपाती करुणा हो। त्यस्तै प्रकारले मानिस माथि करुणा राख्ने तर पशुपन्छीमा करुणा नराख्ने, त्यसरी नै पशु इत्यादिहरूमाथि करुणा राख्ने तर मानिसमाथि करुणा नराख्ने, आफ्नो देशप्रति करुणा हुने तर अरुको देश प्रति करुणा नहुने। हो, त्यस्तो प्रकारका दोषहरू करुणामा मिसिन आउँछन्। त्यस्ता दोषहरू भएमा त्यो करुणा पक्षपात, राग वा द्वेषतिर नै ढल्केको हुन्छ। पक्षपात जस्तो दोष करुणामा भयो भने त्यसको आधारमा एउटा पक्षमाथि मात्र करुणा राखिन्छ। त्यसरी एक पक्षमाथि मात्र करुणा उत्पन्न हुने बेलामा अर्को पक्षलाई अलिकति हानि पुऱ्याउने आशा मनमा रहन जान्छ। त्यस्तो आशा मनमा रहनु खतरा हो।

त्यसकारण, सम्यक्सम्बुद्धले बताउनुभएको मार्गको मूल नै करुणा हो भनिन्छ। जुन पक्षपातरहित वा पूर्वाग्रहरहित हुन्छ (किनभने) जति पनि सत्त्वहरू छन् ती सबैको चाहना वा इच्छा एउटै हो, समान हो। सबै सुख चाहने नै हुन् र दुःख नचाहने नै हुन्। त्यसकारण, हामीले सबै सत्त्वहरूको मदत गर्नुपर्छ, उनीहरूलाई सहायता गर्नुपर्छ भनी सधैं सोचिरहने खालको करुणा नै विशिष्ट तथा निष्पक्ष करुणा हो भनी बताइएको हुन्छ। त्यस प्रकारको विशिष्ट खालको बोधिचित्तयुक्त करुणा, अनि प्रज्ञासहितको करुणा हाम्रो चित्तमा उत्पाद गर्नुपर्छ।

कसैकसैले यस्तो सोच्दा हुन्, “हामीले मनमनै करुणाको भावना गरेर केही लाभ हुँदैन। वास्तवमै भन्ने हो भने त्यो अभ्यासलाई व्यवहारमा पो लागु गर्नुपर्छ। उदाहरणका लागि आम जनमानसको कल्याणार्थ विद्यालयहरू बनाउनुपर्छ। त्यसरी नै अस्पतालहरू बनाउनुपर्छ। यसरी पो अभ्यासमा उतार्नुपर्छ। बौद्धहरू (अन्तर्मुखी बौद्धहरू, नाङ्पा साङ्ग्येपा) अभ्यासलाई व्यवहारमा उतार्दैनन्।

उनीहरू त विहारभिन्न पस्छन्, मैत्रीको भावना गर्छन्, करुणाको भावना गर्छन् र बोधिचित्तको भावना गर्छन्। त्यसरी भावना (मात्र) गरेर बसे के नै फाइदा होला ? त्यसले के नै लछारपाटो लाउला ?” यस्तो विचार उनीहरूको मनमा आउँछ। यसमा के भन्न सकिन्छ भने, हो, साधारणतया: आम सर्वसाधारणको हित हुने काम गर्नु अत्यन्तै राम्रो हो, तैपनि बौद्धहरूको परम्परामा मैत्री र करुणाको भावना अत्यन्तै महत्त्वपूर्ण हुन्छ। किन महत्त्वपूर्ण छ, यसको पछाडि कारण के छ त ? किनभने यो अभ्यासलाई जुनसुकै बेला पनि व्यवहारमा लागु गर्न सकिन्छ। तर हाम्रो कल्याणकारी कार्यबाट हाम्रो मनमा मैत्री र करुणा पर्याप्त मात्रामा उत्पाद नै भएन भने अरुको मद्दत हुने कार्य नै गरे पनि पछि त्यो कार्यमा कठिनाइहरू आउन सक्छन्। उदाहरणका लागि, हामी परदेश जान्छौं। त्यहाँ हामीले एउटा अत्यन्तै दरिद्र माम्गेलालाई भेट्छौं। त्यो माम्गेमाथि करुणा प्रकट गरेर “उसलाई मैले मद्दत गर्नुपर्छ” भन्ने सोचाइले हाम्रो खल्तीभिन्न भएको १० रूपैयाँ मात्रै भएपनि हामीले उसलाई दिन्छौं। त्यसपछि साँझतिर बाटोमा लुखुरलुखुर हिँडिरहेको बेला हामीलाई भोक लाग्छ। तर हामीसँग खानेकुरा छैन। त्यति मात्र कहाँ हो र, बाटोको छेउमा कुनै एउटा चिया पसलमा पुगेर खल्ती छाम्दा एक पैसा पनि भेटाउदैनौं। अघि १० रूपैयाँ थियो तर त्यो पैसा माम्गेलालाई दिएर सकियो। अब के गर्ने ? सधैं त्यसरी दान गर्ने बानी पनि ठिक नहुँदो रहेछ।” हो, हाम्रो मनमा त्यस्तो विचार आउने सम्भावना हुन्छ। त्यस्तो मति उत्पन्न हुनुको पछाडि के कस्तो कारण हुन सक्छ त ? त्यस्तो मति तब उत्पन्न हुन्छ जब हाम्रो मनमा सम्यक् (सही) मैत्री र करुणा विकसित हुँदै जाने अवस्था रहन्छ। त्यसकारण, अरुलाई मद्दत गर्नका लागि सबैभन्दा पहिले आफ्नो मनमा मैत्री र करुणालाई

विकसित गर्दै लग्न सक्नुपर्छ । मैत्री र करुणालाई विकसित गर्दै लानका लागि मैत्री र करुणाको सही र राम्रो भावना गर्न सक्ने हुनुपर्छ । मैत्री र करुणाको भावना गरेर त्यसलाई उत्तरोत्तर अभिवृद्धि गर्दै लान सके मैत्री र करुणा अत्यन्तै बलियो हुँदै जान्छ । जसको फलस्वरूप हामी स्वतःस्फूर्त वा प्राकृतिक रूपले नै अरुको मद्दत र परोपकार गर्न सक्ने हुन्छौ । यसरी हामीले परकल्याण गर्न सक्छौ ।

त्यसकारण हामीले बोधिचित्तको भावना गर्नुपर्छ । सबैभन्दा पहिले यस बोधिचित्तको प्रतिज्ञा ग्रहण गर्नुपर्छ । जस अनुसार बुद्ध, बोधिसत्त्व वा आफ्नो मूल गुरु आदिको सम्मुख परेर आजकै दिनदेखि बोधिज्ञान लाभ नभएसम्म सारा सत्त्वहरूका निम्ति म परम बोधिचित्तोत्पाद गर्दछु र बोधिसत्त्व संवर ग्रहण गर्दछु भन्ने सोचाइका साथ भित्री मनले एकदमै अटल प्रतिज्ञा गरेर परम बोधिचित्तोत्पाद गर्नुपर्छ ।

धर्म(ग्रन्थ)मा बताइएझैं दुई चित्तोत्पाद अर्थात् बोधिप्रणिधि चित्तोत्पाद र बोधिप्रस्थान चित्तोत्पादका बारेमा बताइएको छ ।<sup>९</sup> वास्तविक रूपमा वा साँच्चै मार्गावतार (मार्गमा प्रवेश) गर्न नसक्नेहरूलाई मार्गावतार गर्न सक्ने अवस्थामा पुर्‍याउन र भविष्यमा सबै सत्त्वहरूको अर्थक्रिया (सत्त्वार्थक्रिया) गर्नका निमित्त पनि बोधिचित्त चित्तसन्ततिमा उत्पाद होस् भन्ने प्रणिधान गरिन्छ । त्यस्तो प्रणिधान आदिकर्मिकहरूले गर्दछन् । त्यस्तो प्रणिधान गरेर बिस्तारै बिस्तारै क्रमिक रूपमा आफ्नो चित्त दृढ वा अटल हुँदै गएको बेला आफूले साँच्चै नै सबै प्राणीहरूको अर्थ सिद्ध गर्न सकिन्छ । त्यसरी अर्थ सिद्ध गरेर बोधिचित्तको संवर ग्रहण गरिन्छ । यस प्रकार बोधिप्रणिधि चित्त र बोधिप्रस्थान चित्तलाई क्रमैसँग उत्पाद गरेर बोधिचित्तको संवर ग्रहण गर्नुपर्छ ।

हामीले यस प्रकारको बोधिप्रणिधि तथा बोधिप्रस्थान चित्तको संवर



ग्रहण गर्नुपर्छ । संवर ग्रहण गर्ने बेलामा प्रतिज्ञा पनि गर्नुपर्ने हुन्छ । तैपनि त्यस्तो प्रतिज्ञा हामीले साँच्चै नै पूर्ण रूपेण सिद्ध गर्नुपर्छ कि पर्देन भन्ने प्रश्नको जवाफमा यस्तो भन्न सकिन्छ : आदिकर्मिक वा पृथग्जनको अवस्थामा रहँदाखेरि प्रतिज्ञा पूर्ण रूपले सिद्ध गर्न सकिँदैन, तर त्यो कुरा खासै विशेष छैन किनभने श्रामणेरको संवरजस्तो हो भने त्यो संवर एकपल्ट भन्दा ज्यादा ग्रहण गर्ने चलन छैन, तर बोधिचित्तको संवर जस्तो हो भने त्यो चित्तको संवर भएको भएर त्यस्तो चित्तको संवरमा ज्यादा स्वतन्त्रता हुँदैन । वा त्यसलाई नियन्त्रण गर्न कठिन हुन्छ । अहिले मनले राम्रै सोचिरहेको भएपनि यति नै खेर मनमा नराम्रा विचारहरू पनि उत्पन्न हुने सम्भावना रहन्छ ।

त्यसकारण, यस बोधिचित्तको संवरलाई बारम्बार ग्रहण गरेर आफ्नो भित्री मनमा कुशल वासना बसाउन सक्नु पर्छ । भित्री मनमा कुशल विचार उत्पन्न भए पनि ठिकै छ वा परम गुरुको दर्शन गर्न सके पनि ठिकै छ । त्यसरी नै आश्रयका रूपमा विशेष अधिष्ठानयुक्त जहाँसुकै स्थानमा तीर्थयात्रा गर्न सके पनि ठिकै छ । कुशल विचारका साथमा, परम गुरुको सम्मुख वा विशेष अधिष्ठानयुक्त तीर्थस्थलमा बारम्बार बोधिचित्तको संवरलाई ग्रहण गरिरहनु एकदमै महत्त्वपूर्ण अभ्यास हो । त्यो संवरको रक्षा गर्न सके पनि नसके पनि आफ्नो भित्री मनबाट कुशल प्रणिधान चाहिँ गरिरहनुपर्छ । अनि कुशल प्रतिज्ञा पनि गरेर संवर रक्षामा सकभर धेरै मिहिनेत गर्नुपर्छ ।

चौथो, बोधिचित्तको मुख्य शिक्षाका रूपमा षड्पारमिताको शिक्षा ग्रहण गर्नु पर्ने बारेमा उपदेश : त्यसो त, बोधिचित्त संवरको रक्षाका लागि बोधिसत्त्वका शिक्षाहरू धेरै पाइन्छन् । तैपनि षड्पारमिता नै सबैभन्दा महत्त्वपूर्ण बोधिसत्त्व शिक्षा हो भनी बताइएको छ ।

षड् पारमिताहरू हुन् : दानपारमिता, शीलपारमिता, क्षान्तिपारमिता, वीर्यपारमिता, ध्यानपारमिता र प्रज्ञापारमिता । ती सबैलाई पारमिता किन भनिएको हो भने विशिष्ट (लोकोत्तर) प्रज्ञाले युक्त भएर दान गरिने भएर, विशिष्ट प्रज्ञाले युक्त भएर शील पालन गरिने भएर, विशिष्ट प्रज्ञाले युक्त भएर क्षान्ति, वीर्य, ध्यान र प्रज्ञाको अभ्यास गरिने भएर तिनलाई पारमिता भनिएको हो वा पारमिता भन्ने शब्द तिनको पछाडि जोडिएको हो । त्यसकारण प्रज्ञासंप्रयुक्त विशुद्ध समुत्थान (आशय) तथा साँच्चिकै अरुहरूको हित चाहने बोधिचित्तले युक्त भएर अभ्यास गर्नु भनेको अत्यन्तै महत्त्वपूर्ण कुरा हो । उदाहरणका लागि दान गर्ने हो भने जति विशाल वा ठुलो दान गर्न सक्त्यो त्यति नै राम्रो । होइन भने, सानै वा अलिकति मात्र दान गर्दा पनि खासै फरक पर्दैन, तर त्यसमा नाम वा ख्याति कमाउने तथा यस जीवनका राग र द्वेषसित मिसिएको समुत्थान वा आशय हुनुभएन, तर विशुद्ध र लोकोत्तर समुत्थानका लागि लाभदायक होस् भन्ने इच्छाले दान गर्नुपर्छ । उदाहरणका लागि एउटा सानो चरालाई दुई गेडा दाना नै दान गरेपनि त्यो पनि दान नै हुनपुग्छ । त्यसरी नै साँच्चिकै ठुलो दान नै गर्न सके झनै राम्रै हो । निश्चितरूपमा ठुलो दान गर्ने पर्छ भन्ने त छैन । विशुद्ध समुत्थानले युक्त भएर दान गरे सानै दान पनि सम्यक् दानमै गनिन्छ । यसको ठिक उल्टो, अवश्य पनि सानो दानबाहेक ठुलो दान गर्ने पर्दैन भन्ने आशय पनि होइन । यहाँ दान सानो होस् वा ठुलो, पछुतोरोहित भएर दान गर्न सक्नु नै मुख्य कुरा हो । आफ्नो क्षमताले भ्याएसम्म आफ्नो भित्री मनमा साहस जगाएर प्रसन्नताको अवस्थामा वा खुसी भएर दान गर्नुपर्छ ।

त्यस्तै प्रकारले शील पालन गरिरहेको अवस्थामा पनि (एउटा कुरा ध्यानमा राख्नुपर्छ ।) आफूले शील पालन गर्न सक्छु भन्ने कुरालाई

स्वीकारेर “म यसको अभ्यास गर्ने छु । म राम्रोसँग शीलको पालना गर्ने छु” भन्ने सोच्दै संवरको रक्षा गर्नुपर्छ र यसरी नै शील पालन गर्नुपर्छ ।

क्षान्तिको सन्दर्भमा भन्नुपर्दा पनि साधारणतयाः क्षान्तिको भावना गर्ने तरिका अनेक थरीका हुन्छन्, तर अलिकति भएपनि भित्री द्वेषलाई “मुन्ट्याएर” (थिचेर) क्षान्तिको भावना अभ्यास गर्नु पर्छ । महाक्षान्तिको भावना गर्न सके त राम्रै हो, तर महाक्षान्तिको भावना गर्न नसके पनि सानै क्षान्ति भएपनि माथि बताइए बमोजिम भावना गर्न सके पनि त्यो क्षान्तिकै मार्गमा हिँड्नु हो ।

त्यसपछि चौथो पारमिता वीर्यपारमिता हो । वीर्यको वर्गीकरण गर्नुपर्दा, वीर्य दुई प्रकारका हुन्छन् : श्रद्धायोग वीर्य (धेय् ज्योर घ्यि चोएन् डुय्) र नित्ययोग वीर्य (ताग् ज्योर् घ्यि च्योएन् डुय्) ।

श्रद्धायोग वीर्य भन्नाले अहिले नै तुरुन्तातुरुन्ती अति तीव्र र दरो मिहिनेत गर्नु हो भनी बुझ्न सकिन्छ । त्यस्तै नित्ययोग वीर्य भन्नाले एक वर्ष मिहिनेत गर्ने होइन, दुई वर्ष मिहिनेत गर्ने होइन, अन्तिम वा परम फल (बुद्धत्व) प्राप्त नभइन्जेलसम्म नै तदारुकताका साथ अनवरत मिहिनेत गरिरहनु हो भनी बुझ्न सकिन्छ । त्यसकारण साँच्चै फल नै हातमा पर्न आए जस्तो खालको भएको कारणले हामी साच्चै नै अभ्यास गर्नेहरूलाई नित्ययोग वीर्य अत्यन्तै महत्त्वपूर्ण छ ।

त्यसपछि पाँचौँ पारमिता ध्यानपारमिता हो । शमथ ध्यानलाई प्राथमिकता दिने समाधि भावनालाई ध्यानपारमिता भनिन्छ । ध्यानपारमिता किन महत्त्वपूर्ण छ त ? आचार्य शान्तिदेवले बोधिचर्यावतारमा बताउनु- भएको छ :

चित्तं रक्षितुकामानां मयैष क्रियतेऽञ्जलिः ।

स्मृतिं च सम्प्रजन्त्यं च सर्वयत्नेन रक्षत ॥ ५.२३ ॥

चित्तको रक्षा गर्न चाहनेहरूलाई मेरो हात जोडी बिन्ती छ कि उनीहरूले स्मृति र सम्प्रजन्यलाई पनि सम्पूर्ण प्रयासबाट रक्षा गरून्। आचार्य शान्तिदेवले हात जोडी बिन्ती गरेर दुइटा कुरामा समर्पित हुनका लागि आग्रह गर्नुभएको छ। ती दुइटा कुरा अत्यन्तै महत्त्वपूर्ण, लाभदायक र आवश्यक छन्। त्यसकारण, विशेष महत्त्व दिएर यी दुइटाको अभ्यास निश्चित रूपमा गर्नुहोस्। दुई हात जोडी बिन्ती गरेर म आग्रह गर्दछु भनेर बताइएको छ। ती दुइटा कुरा के के हुन् त ? ती दुइटा स्मृति र सम्प्रजन्य हुन्।

स्मृतिको अर्थ साधारणतया: आफ्नो मनको सदा निरन्तर रूपले रक्षा गरिरहनु र मनको मालिक भएर विस्मृत नभइकन होसमा रहिरहनु हो। अहिले मनले के गर्दैछ भन्ने कुराको हेक्का भइरहनुलाई नै सम्प्रजन्य भनिन्छ। त्यस्तो स्मृति र सम्प्रजन्य मनमा सदैव हुनु अत्यन्तै आवश्यक र महत्त्वपूर्ण पनि भएको कारण भावना गर्नेहरूलाई आचार्य शान्तिदेवले यी ती दुइटा स्मृति र सम्प्रजन्यलाई ठुलो प्राथमिकताका साथ लिनुहोस् भनी निर्देशन दिनुभएको छ।

यसरी आचार्य शान्तिदेवको कथन अनुसार स्मृति र सम्प्रजन्यमा नै आश्रित भइरहनुपर्ने त्यस्तो कारण के हो, कस्तो हो भनी सोध्ने हो भने यसको उत्तर स्वरूप हामीले यस्तो भन्न सक्छौं। उदाहरणस्वरूप भन्नुपर्दा हाम्रा क्लेशहरू भनेका चोर वा डाँकु जस्तै हुन्। चोर र डाँकुहरूले पनि सबैभन्दा पहिले राम्रोसँग जाँच्ने काम गर्छन्। “यो मान्छेलाई लुट्न सकिन्छ कि सकिन्न” भन्ने कुरालाई उनीहरूले राम्रोसँग जाँचेर हेर्छन्। घर मालिक एकदमै बलियो, चलाख र बुद्धिमान भएको खण्डमा उनीहरूले “यहाँ चोर्न वा लुट्न सकिँदैन” भन्ने सोचेर अन्तै हिँडिदिन्छन्। तर घर मालिक कमजोर र त्यतिको चलाख पनि भएन

भने “यहाँ चाहिँ चोर्न सकिएला जस्तो छ” भन्ने सोचेर त्यो घरमा चोरी गर्ने योजनाहरू बनाउँछन्।

माथिको उदाहरण जस्तै, हामीसँग स्मृति र सम्प्रजन्य छ भने क्लेशहरू उत्पन्न हुन सक्दैनन्। राम्रो स्मृति र सम्प्रजन्य भएन भने क्लेश उत्पन्न हुन्छन् अनि आफ्ना कुशलहरू लोप भएर जाने मात्र होइनन्, समस्याहरू र कठिनाइहरूको पनि सामना गर्नुपर्ने हुन्छ, दुःखकष्ट तथा क्लेशहरू बढ्दै जाने इत्यादि अनिष्टहरू आइलाग्छन्। त्यसकारण, क्लेशहरू भनेका डाँकु र लुटेराहरू जस्तै हुन्। ती अकुशलहरूले हानि नपुर्‍याउन् भन्ने उद्देश्यले नै यी दुई स्मृति र सम्प्रजन्यले द्वारपालले जस्तै सुरक्षा दिइरहन सके क्लेशरूपी शत्रुहरू भित्र प्रवेश गर्न पाउँदैनन् र सक्दैनन् पनि।

विशेष गरेर भावना अभ्यास गर्ने बेलामा वा समाहित (समाधिस्थ) हुने बेलामा राम्रो स्मृति र सम्प्रजन्य नभइ हुन्न। सामान्यतयाः भावना अभ्यासका दुई चरणहरू हुन्छन्। ती हुन् : समाहित अवस्था र पृष्ठलब्ध। ती दुईमध्ये पृष्ठलब्धको अवस्था जस्तै काम गर्ने बेलामा, खाना खाने बेलामा, कुराकानी गर्ने बेलामा इत्यादि समयमा सदैव स्मृति र सम्प्रजन्यलाई राम्रोसँग यथावत कायम नै भइरहन दिनुपर्छ। यदि पृष्ठलब्ध अवस्थामा सदैव स्मृति र सम्प्रजन्यलाई सदा रक्षा गरिरहन सकेको खण्डमा त्यसको प्रत्ययले गर्दा समाहित अवस्था (ध्यानको अवस्था) मा पनि राम्रैसँग अभ्यास गर्न सकिन्छ। त्यसो भएकोले समाहित अवस्थाको विकासमा पृष्ठलब्ध सहायकसिद्ध हुन्छ। त्यस्तै प्रकारले समाहित अवस्थाको अभ्यास राम्रोसँग भएको छ भने त्यसको बलले गर्दा पृष्ठलब्धको अवस्थामा पनि त्यसै राम्रो अभ्यास गर्न सकिने हुन्छ। त्यसकारण

पृष्ठलब्धको विकासका लागि पनि समाहित अवस्था सहायकसिद्ध हुन जान्छ । यस प्रकार समाहित अवस्था र पृष्ठलब्ध अवस्था, यी दुईले एक अर्कोको भावना अभ्यासमा उत्तरोत्तर विकास गर्दै लानमा प्रत्ययको भूमिका खेलेर साधकलाई धेरै नै लाभान्वित पार्छन् । त्यसो हुने भएकोले स्मृति र सम्प्रजन्य यी दुइटै समाहित अवस्था र पृष्ठलब्ध अवस्था दुवै अवस्थाका लागि अत्यन्तै महत्त्वपूर्ण छ ।

त्यसपछि छैटौँ पारमिता प्रज्ञापारमिता हो । प्रज्ञापारमिता तीन प्रकारका छन् भनी बताइएको छ : श्रुतमयी प्रज्ञा, चिन्तनमयी प्रज्ञा र भावनामयी प्रज्ञा ।

यस विषयमा भन्नुपर्दा, सबैभन्दा पहिले भगवान् बुद्धको बुद्धवचन तथा उहाँ पछिका पण्डित अनुयायीहरूका शास्त्र इत्यादिहरूमा जे जस्ता अववाद र उपदेशहरू छन् ती अववाद र उपदेशहरू गुरु कल्याणमित्रको सानिध्यमा श्रवण गरेर श्रुतमयी प्रज्ञा उत्पाद गरिन्छ । त्यसपछि, केवल श्रवणमा मात्र सीमित नराखेर तिनका अर्थहरूको बारेमा राम्रोसँग चिन्तन गरिन्छ । राम्रोसँग चिन्तन र जाँच पडताल गरिसकेपछि चिन्तनमयी प्रज्ञा उत्पाद गरिन्छ । त्यसपछि अभ्यासमा उतारिन्छ । यसरी अभ्यासमा उतारेर भावनामयी प्रज्ञा उत्पाद गरिन्छ । भावनामयी प्रज्ञा उत्पाद गरिसकेपछि त्यसकै भरमा शनैःशनैः क्रमबद्धरूपमा अविद्या हटेर जान्छ । अविद्या त्यसरी हटेर गएर अन्ततोगत्वा परम फल (बुद्धत्व) प्राप्त हुने भएर छैटौँ पारमिता अर्थात् प्रज्ञापारमिता अत्यन्तै महत्त्वपूर्ण हुन्छ ।

ग. सारांश : यस प्रकार बोधिचित्तको संवर ग्रहण गरेर अभ्यास गर्ने शिक्षालाई षट्पारमिता भनिन्छ । त्यसरी नै अभ्यास गर्नुपर्छ । यी षट्पारमिताहरूको अभ्यासले आफ्नो चित्तसन्ततिमा रहेका क्लेशहरू, आत्मग्राह जस्ता अविद्याका समूहहरूलाई त्यागिन्छ । त्यसपछि मार्गका

सम्पूर्ण भ्रान्तिहरू शोधन गर्न सकिन्छ । अतः मार्गका भ्रान्तिहरू नाश गर्नका लागि षट्पारमिताको अभ्यास अत्यन्तै महत्त्वपूर्ण मानिन्छ ।

## २.४ भ्रान्ति ज्ञानको रूपमा उदय हुनु

चौथो शीर्षक भ्रान्ति ज्ञानको रूपमा उदय हुनु हो। यसका पनि दुइटै भेद छन् :

२.४.१. (प्राणीहरू) भ्रान्तिमा रहने नय (प्रणालि)

२.४.२. भ्रान्ति ज्ञानको अवस्थामा परिणत हुने नय (प्रणालि)

२.४.१ (प्राणीहरू) भ्रान्तिमा रहने नय (प्रणालि)

यसका पनि दुई भेद छन् : क. (प्राणीहरू) भ्रान्तिमा रहने नयका बारेमा सङ्क्षिप्त व्याख्या र ख. आठ विज्ञानका समूहमार्फत भ्रान्त हुने नयको विस्तृत व्याख्या

क. (प्राणीहरू) भ्रान्तिमा रहने नयका बारेमा सङ्क्षिप्त व्याख्या

माथिका सबै व्याख्या पश्चात् अब भ्रान्ति ज्ञानमा उदय हुने उपदेश दाग्यो वा गम्पोपाका चार धर्महरू मध्ये चौथो धर्म हो। हिजोको धर्मदेशनामा हामीले पहिला तीन धर्महरूसम्मका उपदेश पाइसकेका थियौं। आजको धर्मदेशनामा भ्रान्ति ज्ञानको रूपमा उदय हुने बारेमा उपदेश पाउने छौं।

अब, भ्रान्ति भन्नाले कसरी बुझ्नुपर्छ त भन्ने विषयमा भन्नुपर्दा, अहिले हाम्रो सामु प्रतिभासित भएको वा देखिएको संसारको प्रतिभासलाई हामीले जानिरहेका छौं, बुझिरहेका छौं। संसारको प्रतिभासको सन्दर्भमा के के कुरा आउँछन् त भन्ने प्रश्नको उत्तरमा



यस्तो भन्न सकिन्छ । संसारको प्रतिभासको सन्दर्भमा यी दुइटै कुरा हुन्छन् । बाह्य विषयको प्रतिभास तथा भित्री ग्राहक मन । अतः बाह्य विषयको प्रतिभास र भित्री ग्राहक मन हुन्छन् । बाह्य विषयको प्रतिभासभन्दा पनि भित्री ग्राहक मन नै (प्रमुख हो, किनभने) त्यसमा विभिन्न प्रकारका प्रतिभासहरू उत्पन्न हुन्छन् र ती नै भ्रान्ति हुन् । त्यसै कारणले गर्दा भित्री ग्राहक मन भ्रमित हुन्छन् । भित्री ग्राहक मन भ्रमित हुने नय वा तरिका कस्तो हो भन्ने विषयमा भन्नुपर्दा के भन्न सकिन्छ भने सामान्यतयाः लोकमा भगवान् बुद्धको प्रादुर्भाव हुनुभन्दा अगाडि भारतमा ऋषिहरू अनेक तपस्यामा लीन हुने गर्थे । अनेक तपस्या ध्यानहरू गरेर उनीहरूमा उत्पन्न भएको अनुभूति र भित्री ज्ञानको आधारमा अनेक दर्शनहरू र परम्पराहरू खडा भए । ती दर्शन र परम्पराहरू अन्तर्गत चित्तलाई नै आत्मा भनिन्थ्यो र त्यो आत्मालाई नै “म” भनिन्थ्यो । अर्थात् एकल “म” वा एकल “आत्मा” भनिन्छ । उदाहरणको रूपमा यसलाई यसरी बुझ्न सकिन्छ । कुनै ६ ओटा झ्याल भएको घरमा एउटा बाँदरलाई थुनेर राखिन्छ । बाँदर त असाध्यै चञ्चल हुन्छ । त्यो बाँदर कहिले पूर्वको झ्यालबाट बाहिर हेर्छ भने कहिले दक्षिणको झ्यालबाट बाहिर हेर्छ । कहिले पश्चिमको झ्यालबाट पनि हेर्छ । बाँदर कोठाभित्र यस्तै यता उता उफ्रँदै बस्छ । सामान्यतया कोठाभित्र बाँदर त एउटा मात्रै छ । तर बाहिरबाट हेर्दा कोठाभित्र प्रायः पाँचओटा बाँदर छन् जस्तो देखिन्छ वा त्यसरी देखापर्छ ।

माथिको उदाहरण जस्तै जसलाई आत्मा भनिन्छ त्यो पनि एक हुन्छ, तर कहिले आँखामार्फत हेर्दा रूपहरू देखिन्छ । कानले सुन्दा शब्दहरू सुनिन्छ इत्यादि पञ्च इन्द्रियजन्य प्रतिभासहरू उत्पन्न हुन्छन् । त्यसकारण, साँच्चै भन्नुपर्दा आत्मा वा मन एक हुन्छ भन्ने खालको धारणा उनीहरू (गैर बौद्धहरू) को परम्परामा प्रचलित छ ।

तर परम शास्ता सम्यक्सम्बुद्धको दृष्टिबाट हेर्ने हो भने त्यस्तो प्रकारको एकल आत्मा भन्ने सत्ता हुँदै हुँदैन। आत्मा भन्ने सत्ता नै नभएको कारणले भगवान् बुद्धले सामान्यतया संसार (जीवन र जगत) को अवस्था जस्ता कुराहरू (वास्तवमा) पञ्च स्कन्ध (रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार र विज्ञान) हुन् भनी बताउनुभएको छ। धर्महरू अनेक (हेतु प्रत्ययहरू) सङ्गृहित भएर बनेका पिण्डहरू हुन्। त्योभन्दा बाहेक एकल एकाइका रूपमा सिद्ध भएर रहने धर्म कुनै पनि हालतमा हुनै सक्दैन भनी भगवान् बुद्धले बताउनुभएको छ। पञ्च स्कन्धमध्ये पनि विशेषतः विज्ञान स्कन्धको दृष्टिकोणबाट भन्ने हो भने यो चित्त अनादिकालदेखि धेरै नै अभिसंस्कृत भएर एकल सत्तामा भ्रमित हुँदै आएको छ। त्यो चित्तको भ्रम मात्र हो, त्यो बाहेक साँच्चै एकल सत्ताका रूपमा सिद्ध भएर रहने कुनै पनि (धर्म) हुँदैन। त्यसैकारणले गर्दा भगवान् बुद्धले त्यसलाई विज्ञान स्कन्ध भनी भन्नुभएको हो। त्यो विज्ञान स्कन्ध पनि एकल वा एउटा मात्र विज्ञान नभएर धेरै नै विज्ञानहरू हुन्छन्। अतः हामीसँग धेरै नै विज्ञानहरू हुन्छन्।

### ख. आठ विज्ञानका समूहमार्फत भ्रान्त हुने नयको विस्तृत व्याख्या

त्यसकारण भगवान् बुद्धले ६ ओटा विज्ञान (षड्विज्ञान) को समूह तथा ८ ओटा विज्ञान (अष्टविज्ञान) को समूहको व्याख्या प्रस्तुत गर्नुभएको छ।

सबैभन्दा पहिले ६ विज्ञान (षड्विज्ञान) को समूह के हुन् भन्ने सन्दर्भमा यसरी व्याख्या गर्न सकिन्छ। जसले रूप हेर्ने काम गर्छ त्यो चक्षुर्विज्ञान हो। चक्षुर्विज्ञानले रूप देख्छ, तर शब्द सुन्दैन। चक्षुर्विज्ञानको काम नै रूप हेर्ने हो। त्यसरी नै शब्द सुन्ने काम श्रोतविज्ञानको हो। गन्ध

सुँघ्ने काम घ्राणविज्ञानको हो। रस चाल पाउने काम जिह्वाविज्ञानको हो। स्पर्श चाल पाउने काम कायविज्ञानको हो। रूप, शब्द, गन्ध, रस, स्प्रष्टव्यहरू गरी पाँच ओटा बाह्य विषयहरू बाह्याभिमुखी वा बाहिरी धर्महरूतर्फ आकर्षित हुन्छन्। ती ५ बाह्य विषयहरू वा बाह्यार्थहरूलाई अनुभूत गर्ने वाला पाँच विज्ञानलाई पाँच इन्द्रिय विज्ञान भनिन्छ। त्यस प्रकारका पाँच इन्द्रिय विज्ञानहरूलाई निर्विकल्प विज्ञान भनिन्छ। ती इन्द्रियहरूबाट नै हेरिन्छ, सुनिन्छ, अनुभव गरिन्छ। वास्तविकता त्यो हो। त्यसो नभएर अनेक विकल्पहरू आफै उत्पन्ने हुने होइनन्।

त्यसो भए अनेक विकल्पहरू कहाँबाट उत्पन्न हुने हुन् त ? छैटौँ मनोविज्ञानले गर्दा उत्पन्न हुने हुन्। छैटौँ मनोविज्ञानले बाह्य रूप हेर्ने होइन। शब्द सुन्ने होइन। गन्ध सुँघ्ने होइन। रसास्वादन गर्ने होइन। स्प्रष्टव्यको अनुभूति गर्ने होइन। यी सबै भएर पनि पाँच इन्द्रिय विज्ञानहरूको पछि लागेर यसले अस्पष्ट ढङ्गबाट “यो राम्रो हो, यो खराब वा नराम्रो हो, यो ठुलो हो, यो सानो हो” भनी सोच्छ वा चिन्तन गर्छ। त्यसरी चिन्तन गरेर त्यसले अनेक विकल्पहरू बनाएर अतीत, भविष्य र वर्तमान इत्यादिका अनेक पक्षहरूको चिन्तन गरेर ग्राह गर्छ। त्यसरी अनेक विकल्पहरू बनाएर त्रिकालका पक्षहरूको ग्राह गर्ने भएर छैटौँ मनोविज्ञानलाई सविकल्प विज्ञान भनिन्छ। त्यसकारण हरेक चित्तका आ-आफ्नै छुट्टाछुट्टै लक्षण हुन्छन् र हरेकका कार्य पनि छुट्टाछुट्टै र विविध हुन्छन्। उदाहरणका लागि, देवको भावना (देवयोग) गर्ने बेलामा, हामीमध्ये कसैकसैले आँखाले साक्षात् दर्शन गरे जस्तै नै स्पष्ट देवता प्रकट होउन् भनी सोच्छौँ। अनि हामीले त्यस्तो आशा राख्छौँ। आशा गरे अनुसार देवता स्पष्ट देखिएन भने देवताको भावना गर्ने साधकले वा भनूँ हामीले “खोइ, यो त ठिक भएन,” भन्ने सोच्छौँ, जसको फलस्वरूप हाम्रो मन कुँडिन्छ। तर कुनै पनि हालतमा त्यसरी

सोच्नु पर्दैन। किनभने देवताको भावना गर्ने बेलामा हाम्रो आँखाले देवताको भावना गर्ने होइन। षड् विज्ञानमध्ये छैटौँ मनोविज्ञानले देवताको भावना गर्ने हो। अतः त्यो मनले देख्ने आकृति कुनै पनि हालतमा आँखाले देखेजस्तो स्पष्ट हुँदैन। त्यसकारण देवताको भावना गर्ने बेलामा हामीले देवता अत्यन्तै स्पष्ट देखा परुन् वा पर्नुपर्छ भनी आशा गरेर बस्ने होइन। अस्पष्टताबाट वा अस्पष्टताको कारणले नै मनले ग्राह गर्छ।<sup>१९</sup> त्यसरी ग्राह गर्नु मनको आफ्नो लक्षण नै हो।

त्यसकारण, भगवान् बुद्धले यदाकदा षड्विज्ञानका समूहका बारेमा बताउनुभएको छ। त्यो छैटौँ मनोविज्ञान अत्यन्तै स्थूल र अस्थिर हुन्छ। त्यो यदाकदा उत्पन्न हुन्छ, यदाकदा निरुद्ध हुन्छ। जस्तो उदाहरणका रूपमा चक्षुविज्ञानलाई नै लिन सकिन्छ। आँखा खोलेर हेर्दा चक्षुविज्ञान उत्पन्न हुन्छ। आँखा चिम्लेको बेला चक्षुविज्ञान नै हुँदैन। शब्द कानले सुनेको बेला श्रोत्रविज्ञान उत्पन्न हुन्छ। कानले शब्द नसुनेको बेला श्रोत्रविज्ञान उत्पन्न हुँदैन। त्यसरी नै विकल्पहरू उत्पन्न भएको बेला मनोविज्ञान हुन्छ। विकल्प उत्पन्न नभएको बेला मनोविज्ञान हुँदैन। त्यसकारण विज्ञान स्थूल हुन्छ। अलि राम्रोसँग र सजिलै चिन्न र बुझ्न सकियोस् भनेर भगवान् बुद्धले तिनलाई ६ ओटा विज्ञानका समूह भनी बताउनुभएको हो।

पुनः यदाकदा भगवान् बुद्धले आठ विज्ञान (अष्टविज्ञान) का समूह भनेर पनि बताउनुभएको देखिन्छ। अष्ट विज्ञानको समूह भन्नाले ६ विज्ञान र तीमाथि दुईटा विज्ञान अर्थात् क्लिष्ट मनोविज्ञान तथा आलयविज्ञान समेत थपेर बताउनुभएको छ। ती दुई थप विज्ञान अलि सूक्ष्म छन्।

त्यो भन्दा पनि सातौँ विज्ञान अर्थात् क्लिष्ट मनोविज्ञान कस्तो प्रकारको

हुन्छ भन्ने प्रश्नको उत्तरमा यसरी व्याख्या गर्न सकिन्छ । क्लिष्ट मनोविज्ञान आत्मग्राहको स्वभाव जस्तो भएको भएर मनोविज्ञान जस्तो स्थूल हुँदैन । त्यस्तै त्यो आत्मग्राहलाई “म” भन्ने स्थूल आत्मग्राह सँग सँगै ग्राह गर्ने बेलामा छैटौँ मनोविज्ञान उत्पन्न हुन्छ । क्लिष्ट मनका रूपमा त्यस्तो स्थूल आत्मग्राह उत्पन्न भएको बेला पनि, उत्पन्न नभएको बेलामा पनि वा जुनसुकै बेलामा पनि ‘म’ भन्ने भावप्रतिको ग्राह किमार्थ विस्मृत नभइकन सदासर्वदा रहिरहन्छ । यो कसको ग्राह हो त ? क्लिष्ट मनको ग्राह । त्यसकारण रात होस् वा दिन होस्, आँखा खोलेको अवस्थामा होस् वा आँखा चिम्लेको अवस्थामा होस्, शब्द सुनेको अवस्थामा होस् वा शब्द नसुनेको अवस्थामा होस्, मनोविज्ञान उत्पन्न भएको बेलामा होस् वा त्यो उत्पन्न नभएको अवस्थामा होस्, क्लिष्ट मन सदासर्वदा रहिरहन्छ । यो क्लिष्ट मन स्थूल नभएर अत्यन्तै सूक्ष्म छ । सूक्ष्म भएर यो ‘म’ भन्ने भावप्रतिको ग्राह एकछिन पनि विस्मृत नभइकन सदा निरन्तर प्रवाहित भइ नै रहन्छ । त्यसैलाई क्लिष्ट मन भनिन्छ ।

त्यसको भित्र आठौँ विज्ञान अर्थात् आलय विज्ञानलाई देखाइएको हुन्छ । आलयविज्ञान कस्तो प्रकारको हुन्छ भन्ने प्रश्नको जवाफमा यसरी व्याख्या गर्न सकिन्छ । हाम्रो चित्तलाई अन्य शब्दमा भन्ने हो स्फूट र चेतना भनी भन्न सकिन्छ । स्फूट र चेतना भन्नाले जेसुकै वा जुनसुकै अवस्थामा पनि ज्ञान तैयार भइरहने र जेसुकै वा जुनसुकै अवस्थामा स्फूटता भइरहने भनेर बुझ्न सकिन्छ । त्यसकारण, यो पत्थर जस्तो द्रव्य नभइकन सदा विविध परलक्षणहरूले युक्त हुन्छ । (परतन्त्र स्वभाव) षड्विज्ञानको समूह भए पनि नभए पनि त्यसले त्यस्तो चित्तको लक्षणलाई खासै प्रभाव पार्दैन किनभने त्यस्तो चित्तको स्फूटता र चेतनाको लक्षण वा स्वभाव सदासर्वदा अविच्छिन्न रूपमा रहिरहन्छ ।

सदा चक्षुर्विज्ञान र श्रोत्रविज्ञानहरू उत्पन्न हुन खोजिरहेको हुन्छ । ठिक त्यसै गरी मनोविज्ञान नै पनि सदा उत्पन्न हुन खोजिरहेको हुन्छ । यसै अनुरूप त्यो विज्ञान अन्य सबै विज्ञान उत्पन्न हुने चार महाभूत जस्तै आधार भएर रहने भएर त्यसलाई आलयविज्ञान भनिएको हो ।

त्यस्तो प्रकारको आलय र क्लिष्ट मन दुइटै नित्य र अपरिवर्तनीय भने हुँदैनन् । तैपनि सदा अन्तरालरहित वा अविच्छिन्न रूपमा ती दुइटै विज्ञान रहिरहन्छन् । षड्विज्ञान (६ ओटा विज्ञान) को उत्पत्ति र निरोधजस्तै यी दुइटै विज्ञान यदाकदा अस्तित्वमा आउने र यदाकदा अस्तित्वमा नआउने खालको विज्ञान होइनन् । त्यसो हुने भएर यी दुई विज्ञानलाई स्थिर विज्ञान भनिन्छ ।

सामान्यतया: चित्तको अवस्था जस्तोसुकै भएपनि त्यो अवस्था यही आठ विज्ञानमै समेटिन्छ । त्यसकारण आठ विज्ञानको समूहलाई चित्त भनिन्छ । त्यो चित्तको सन्दर्भमा भन्ने हो भने त्यसको स्वभाव नै सामान्य स्फूर्तता (स्पष्टता) मात्रै हो । त्यो भन्दा अन्य यसको खास विशेषता छैन, तैपनि यो चित्तका चित्त तथा चैतसिक गरी दुई पक्षहरू हुन्छन् । ती दुई पक्षमध्ये चैतसिक भन्नाले चित्तवृत्ति, मनोवृत्ति वा मानसिक अवस्थाजस्तै हो भनी बुझ्न सकिन्छ । चित्तवृत्ति कहिले सुखद वेदनाको हुन्छ भने कहिले दुःखद वेदनाको हुन्छ । कहिलेकाहीँ मैत्री र करुणा जस्ता कुशल विचार हुन्छ । त्यसरी छिनछिनमा विभिन्न विचार वा मनस्थिति उत्पन्न भइरहने भएर चित्तको वृत्ति (चित्तवृत्ति) मा परिवर्तन भइरहन्छ । यदाकदा राग, द्वेष इत्यादि क्लेशहरूका विपरिणामहरू पनि भइरहन्छन् । त्यस्तै अन्य पनि अनेक विपरिणाम (परिवर्तनहरू) भइरहन्छन् । तिनको सन्दर्भमा भगवान् बुद्धले बताउनुभए अनुसार चैतसिक जम्मा ५१ ओटा छन् ।<sup>१२</sup> त्यसकारण ती ५१ ओटा चैतसिक वा चित्त सम्प्रयुक्त धर्महरू उत्पन्न भएर शनैःशनैः

चित्त परिवर्तित हुँदै जाँदा यदाकदा चित्त सौमनस्यले युक्त हुन्छ भने यदाकदा दौर्मनस्यले भरेको हुन्छ । यदाकदा त्यो भ्रमित हुन्छ । यदाकदा त्यो समाधि जस्तो मानसिक भावले युक्त हुन्छ । यदाकदा चित्तमा बुद्धिविवेक जस्तो मानसिक भाव उत्पन्न हुन्छ । यसरी मनमा अनेक विपरिणाम (परिवर्तन) हरू आइरहन्छन् । अहिले हाम्रो अष्ट विज्ञानको समूहमा भ्रान्तिका अनेक चैतसिकहरू उत्पन्न भइरहेको अवस्था छ । त्यस्तो मानसिक भावमा हामी रुमलिएर बसेका छौं ।

### २.४.२ भ्रान्ति ज्ञानको अवस्थामा परिणत हुने नय (प्रणालि)

यसका पाँच भेद छन् : क. भ्रान्ति ज्ञानका रूपमा उदय हुने नयको सारांश, ख. पाँच मार्गमा हिँड्ने नय, ग. अष्टविज्ञानका समूह पञ्च ज्ञानमा परिणत हुने नयको विस्तृत व्याख्या, घ. फल अर्थात् बुद्धत्व प्राप्त हुने नय र ङ. समुदाचार निर्विकल्प सत्त्वार्थक्रियाका नय ।

### क. भ्रान्ति ज्ञानका रूपमा उदय हुने नयको सारांश

अब भ्रान्तियुक्त चित्त भ्रान्तिरहित ज्ञानको स्वभावमा बिस्तारै बिस्तारै क्रमैसँग परिणत हुँदै जानुपर्छ । भ्रान्तिरहित ज्ञानको स्वभावमा कसरी परिणत हुँदै जानुपर्छ त भन्ने प्रश्नको जवाफमा यसरी व्याख्या गर्न सकिन्छ । सबैभन्दा पहिले स्थूल विकल्पहरूले युक्त चित्त परिणत हुँदै जानुपर्छ । स्थूल विकल्पहरूले युक्त चित्त कस्तो हुन्छ भने अष्टविज्ञानको समूहमा प्रमुख छैटौँ विज्ञान अर्थात् मनोविज्ञान हो । छैटौँ मनोविज्ञानले नाना थरीका अनेक क्रियाहरू गरिरहन्छन् अर्थात् निर्माणहरू गरिरहन्छन् । त्यसले गर्दा नै अनेक विकल्पहरू पैदा हुन्छन् । त्यसकारण हामीले अनेक विकल्पहरू उत्पन्न भएको बेलामा भावना गर्नुपर्छ वा

ध्यान गर्नुपर्छ । भावनामा पनि प्रमुख भावना कुनचाहिँको गर्नुपर्छ भन्ने विषयमा यस्तो भन्न सकिन्छ । चक्षुविज्ञान, श्रोत्रविज्ञानादिद्वारा भावना गर्ने होइन । मुख्यतयाः विकल्पहरूलाई दमन गर्ने प्रतिपक्षको आडमा ध्यान गर्नुपर्ने विज्ञान कुनचाहिँ हो ? त्यो छैटौँ विज्ञान अर्थात् मनोविज्ञान हो । हो, छैटौँ विज्ञान अर्थात् मनोविज्ञानकै सबैभन्दा पहिले ध्यान गर्नुपर्छ ।

### ख. पाँच मार्गमा हिँड्ने नय

यसरी ध्यान गर्ने बेलामा हामीले गुरुको सम्मुख उपदेशहरू सुन्छौँ । अनि मनको भित्री गहिराइबाट संवर ग्रहण गर्छौँ । संवरको सार उत्पन्न गर्ने तरिका कस्तो हुन्छ ? भावना गर्नुपर्ने कारण, भावना गर्ने तरिका राम्रोसँग जानेर बिस्तारै बिस्तारै क्रमैसँग अभ्यास गर्दै लग्ने बेलामा पुगिने पञ्च मार्गमध्ये पहिलो मार्गलाई सम्भार मार्ग भनिन्छ । यसरी राम्रोसँग अभ्यास गर्ने क्रममा कसरी भावना गर्नुपर्छ भन्ने विषयमा यस्तो व्याख्या गर्न सकिन्छ । यथार्थ सत्यको यथास्थिति, चित्तको यथास्थिति वा धर्मताको सत्यलाई त हामीले प्रत्यक्ष दर्शन गर्दैनौँ, तर मनले अनुमानको आधारमा यो यस्तो हो, यसरी ध्यान गर्नुपर्छ र यसरी कार्य गर्छु भनी भावना गर्ने मार्गलाई अधिमुक्तिचर्या मार्ग भनिन्छ । त्यो मनले त्यस्तो अधिमुक्ति प्रकट गरेर भावना गर्दछ । अधिमुक्तिचर्याको त्यस अवस्थालाई प्रयोग मार्ग भनिन्छ । यसरी अधिमुक्तिलाई प्राथमिकता दिएर वा प्रमुख मानेर भावना अभ्यास गरेर बस्दा बस्दै भावना झन् झन् स्फूर्त वा स्पष्ट हुँदै जान्छ । हुँदा हुँदै अन्तोगत्वा धर्मताको सत्य तथा चित्तको यथास्थितिको साक्षात् दर्शन हुन पुग्छ । त्यसरी साक्षात् दर्शन हुने भएर यसलाई दर्शन मार्ग भनिन्छ । तत्पश्चात् केवल चित्तको यथास्थिति (सेम् क्वि नेलुग) मात्र



दर्शन गर्नले पुग्छ कि पुग्दैन भन्ने सोध्ने हो भने यसको जवाफ हो : केवल चित्तको यथास्थितिको मात्र दर्शनले पुग्दैन । पुनः त्यसको बारम्बार भावना गर्नुपर्छ । यसरी पहिले दर्शन मार्गको अवस्थामा दर्शन भएको अर्थलाई बारम्बार भावना गरिरहने मार्गलाई भावना मार्ग भनिन्छ । यसरी भावना गरेको गरेकै भएपछि साँच्चिकै धर्मताको सत्यलाई पारङ्गतत्वको हृदयसम्म नै साक्षात्कार गरेर पहिले जस्तै अब भावना गरिरहन नपर्ने भूमिमा पुगिन्छ । त्यो अवस्थालाई अशैक्ष मार्ग भनिन्छ ।

त्यसकारण, हामीले धर्मको अभ्यास गर्ने क्रम र फल प्राप्त हुँदै जाने क्रम अनुसार सबैभन्दा पहिले सम्भार मार्ग, अनि प्रयोग मार्ग, त्यसपछि दर्शन मार्ग, भावना मार्ग हुँदै अशैक्ष मार्ग सम्म पुग्ने भएर यसलाई पाँच मार्ग भनिन्छ ।

अतः एव अष्टविज्ञानको समूहमा प्रमुख विज्ञानको रूपमा रहेको मनोविज्ञानलाई बिस्तारै बिस्तारै क्रमैसँग परिणत गर्दै लगेर भावना गर्नुपर्छ । अनि समाधिको भावना गर्ने बेला मार्गक्रम अनुसार त्यसमा उत्तरोत्तर वृद्धि हुँदै जान्छ । यसरी समाधिको भावना गर्ने बेलामा त्यसको सहायताको लागि दानको अभ्यास गर्नु, शीलको पालना गर्नु इत्यादि पुण्य सम्भारको आश्रय लिनुपर्छ । त्यो बेला त्यसरी पुण्यसम्भारको सहारा लिनु अत्यन्तै महत्त्वपूर्ण हुन्छ, किनभने त्यो पुण्य सम्भारले गर्दा नै समाधिको अभ्यासमा उत्तरोत्तर अभिवृद्धि हुँदै जाने हो ।

*ग. अष्टविज्ञानका समूह पञ्च ज्ञानमा परिणत हुने नयको विस्तृत व्याख्या*

यस प्रकार छैटौँ मनोविज्ञानद्वारा भावना गर्ने बेलामा छैटौँ मनोविज्ञान माथि बताइएझैं अस्थिर विज्ञान भएको कारणले अब बेला बेलामा उत्पन्न हुने र बेला बेलामा निरोध हुने भइ नै रहन्छ । निरोध भइसकेको

अवस्थामा त्यो विज्ञान हावा बहेजस्तै पुरानो विज्ञान लोप भएर नयाँ विज्ञान उत्पन्न त हुन्छ तर निरोध भइसकेको विज्ञान फेरि फर्केर आउँदैन, तर मनोविज्ञानद्वारा असल वा खराब जेसुकै भावना गरेपनि त्यो र त्यसको वासना आलयविज्ञानभित्र छोडिन्छ। त्यसैले गर्दा हामीले भावना गर्ने बेलामा मनोविज्ञानद्वारा भावना गछौं। भावना गर्दा गर्दै त्यो मनोविज्ञान आफै विलीन हुँदै जान्छ। विलीन भएर गए पनि त्यसको वासना भने आलयविज्ञानमा रहन जाने हुन्छ। त्यसकारण बिस्तारै बिस्तारै क्रमैसँग अष्ट विज्ञानको समूह शुद्ध नभएको अवस्थामा भएका भ्रान्तिहरू शुद्धिकरण हुँदै जान्छन् र क्रमैसँग परिणत हुँदै जान्छन्।

त्यसकारण, अष्टविज्ञानको समूहको सन्दर्भमा, भावनानुभूतिको कारणले परम वा अन्तिम फल साक्षात्कार गर्ने बेला (अष्टविज्ञानको समूहको) भ्रान्ति ज्ञानको रूपमा उदय हुँदै जान्छ। त्यो ज्ञान पनि पञ्चविध ज्ञान वा पञ्चज्ञानको स्वरूपमा उदय हुँदै जान्छ।

त्यसो भए पञ्चविध ज्ञान कसरी उदय हुन्छ त ? त्यसको सन्दर्भमा व्याख्या गर्दा, आलयविज्ञान धर्मधातु ज्ञानको स्वरूपमा उदय हुन्छ, अनि मनोविज्ञानले धर्महरूको सम्यक् यथास्थिति (नेलुग) को भावना गर्ने बेलामा त्यसबाट आलयविज्ञानमा (पुण्याभिसंस्कारको) वासना रहन जान्छ। त्यसै वासनाले गर्दा आलयविज्ञानमा अलिकति परिवर्तन आउँछ। त्यसपछि अहिलेका यी अशुद्ध प्रतिभासहरू विलीन भएर शुद्ध प्रतिभासका रूपमा धर्मताको यथास्थितिको अवबोध हुन्छ। त्यसैलाई धर्मधातुज्ञान भनिन्छ। त्यसैबाट यथाभूत धर्मता बोधक ज्ञानको उदय हुन्छ।

धर्मधातु ज्ञान उदय हुने बेलामा आकिञ्चन अवस्था (अथवा केही पनि नभएको खोक्रो अवस्था) उदय हुन्छ कि हुन्न ? जवाफ : आकिञ्चन अवस्थाको उदय हुँदैन।

त्यसो भए के उदय हुन्छ त ? त्यसलाई आदर्शज्ञान भनिन्छ जसमा असल खराब केही पनि विकल्प किमार्थ हुँदैन, तैपनि सत्त्वहरूको प्रतिभास, भ्रान्ति र अभ्रान्तिहरू सबै स्फूट रूपमा वा स्पष्ट रूपमा जान्ने ज्ञानको उदय हुन जान्छ । उदाहरणस्वरूप, ऐनामा रूप देखापर्दा रूप साँच्चिकै देखापर्ने हो कि होइन भनी सोध्ने हो भने रूप त्यहाँ साँच्चिकै हुँदै हुँदैन भनी जवाफ दिइन्छ । त्यसरी नै ऐनामा कुनै पनि विकल्प हुँदैन । तैपनि बाहिरी रूपको आकृति र वर्ण (वर्ण र संस्थान) राम्रो भएपनि नराम्रो भएपनि ती सबै ऐनामा स्पष्टैसँग प्रतिबिम्बित हुन्छन् । त्यही उदाहरण अनुरूप हाम्रो चित्त विज्ञान ज्ञानमा परिणत हुने बेलामा धर्मता शून्यता तथा सम्पूर्ण धर्मी प्रतिभास एकदमै चहँकिलो प्रभास्वरको स्वरूपमा उदय हुन्छन् । त्यसकारण त्यसलाई आदर्शज्ञान भनिएको हो ।

त्यसरी नै क्लिष्ट मनोविज्ञान पनि समताज्ञानमा परिणत हुँदै जान्छ । त्यसो भए क्लिष्ट मनोविज्ञान कसरी ज्ञानमा परिणत हुन्छ भन्ने विषयमा के भन्न सकिन्छ भने साधारणतयाः क्लिष्ट चित्तसम्प्रयुक्त धर्म अर्थात् चैतसिकहरूको परिप्रेक्षमा आत्मग्राहको साथमा ‘म’ वा ‘मै हुँ’ भन्ने ग्राह पनि आउँछ । त्यसरी नै आत्मामा टास्सिएर आफू प्रति ठुलो आसक्ति उत्पन्न हुन्छ । अनि आफूप्रति ठुलो घमण्ड जाग्छ र ‘मै ठुलो हुँ, मै सर्वश्रेष्ठ हुँ, म विशिष्ट हुँ’ भन्ने अहङ्कारी भाव जसलाई अस्मिमान भनिन्छ, पैदा हुन जान्छ । आत्ममूढता भनेको उसले मूढता (अज्ञानता) को कारण यथास्थिति वा तत्त्व किमार्थ जान्दैन । त्यही अविद्या हो । त्यस प्रकारको चित्त सम्प्रयुक्त धर्म अर्थात् चैतसिकले युक्त हुन्छ । त्यसकारण भावना अभ्यासमार्फत आत्मग्राह, आत्मराग, आत्माभिमान, आत्ममूढता आदि परिणत भएर विलीन भएर जाने बेला क्लिष्ट मनको परावृत्ति हुन्छ । त्यो परावृत्तिले गर्दा आत्मराग इत्यादि

उपर्युक्त चार प्रकारका क्लेशहरू कुनैपनि रहने छैन। ती क्लेशहरू नरहने भएकोले सारा सत्त्वहरूलाई भेदभावरहित भएर समता भावले हेर्दै गइन्छ। त्यसो हुने भएर क्लिष्ट मनको परावृत्ति नै समता ज्ञान हो भनी बताइएको छ।

त्यसपछि छैटौं मनोविज्ञानको परावृत्ति प्रतिवेक्षणा ज्ञान कस्तो किसिमको ज्ञान हो भन्ने विषयमा यसरी व्याख्या गर्न सकिन्छ। साधारणतया: हाम्रा ज्ञानहरूमध्ये विषयलाई स्पष्टसँग जान्ने वा बुझ्नेवाला विज्ञान भनेकै छैटौं विज्ञान अर्थात् मनोविज्ञान हो। तैपनि अज्ञान र मूढताले ढपक्कै छोपेका कारणले त्यो मनोविज्ञानले तत्त्वको अवस्थिति वा यथास्थिति पूर्ण रूपमा र सम्यक् रूपमा बोध गर्न सकेको हुँदैन। अब हामीले भावना अभ्यासमार्फत सम्पूर्ण मूढता, अविद्याजन्य भ्रान्तिलाई प्रहाण गरेर सम्यक् यथाभूततालाई बोध गर्छौं। त्यसैलाई प्रतिवेक्षणा ज्ञान भनिन्छ।

तत्पश्चात् पाँच इन्द्रिय विज्ञान जुन ज्ञानमा परिणत हुन्छ त्यसलाई पाँचौ ज्ञान अर्थात् कृत्यानुष्ठान ज्ञान भनिन्छ। यहाँ कृत्यानुष्ठान भन्नाले सम्पूर्ण कृत्यहरू सिद्ध गर्न सक्षम भएको अवस्था भनी बुझ्नुपर्छ। जहाँसम्म हाम्रो कृत्य कसले सिद्ध गर्ने हो भन्ने सन्दर्भ छ, त्यसलाई यसरी बुझ्न सकिन्छ। चक्षुले रूप देखेको प्रत्ययमा आधारित भएर काम गर्छ। कानले शब्द सुनेको प्रत्ययमा आधारित भएर काम गर्छ आदि गरेर पाँच इन्द्रिय विज्ञानले नै सम्पूर्ण कार्य यसरी नै सिद्ध गर्छन्, तर पनि त्यस्तो प्रकारले कार्य सिद्ध गर्ने बेलामा कार्यभार पूरै पारङ्गत्वको हृदयसम्म सिद्ध गर्न सकिँदैन, किनभने तिनमा मूढता र भ्रान्ति हुन्छन्।

भ्रान्त कसरी होइन्छ वा भ्रान्त हुने नय कस्तो हो भन्ने कुरालाई यसरी बुझ्न सकिन्छ। उदाहरणस्वरूप हाम्रो आँखाले काम गरेको

कारणले हामीले रूप देख्छौं। हामीले घरभित्रका जति पनि रूपहरू छन् तिनलाई मात्र देख्न सक्छौं। उति नै खेर हामीले घरबाहिर रहेका कुराहरूलाई भने देख्न सक्दैनौं। कानले शब्दहरू सुनेता पनि बाहिरका शब्द तथा आवाजहरू कम मात्र वा अलिकति मात्र सुन्न सक्छ, कानले सबै शब्दहरू त्यति नै टङ्कारो सुन्न सक्दैन। त्यसरी नै रूप देख्ने, शब्द सुन्ने इत्यादि गर्ने बेलामा मूढता, भ्रान्ति र गल्तीहरू धेरै नै हुन जान्छन्। तत्पश्चात् छैटौं मनोविज्ञानद्वारा समाधि-भावना अभ्यासको बलमार्फत समाधिको वासना आलयविज्ञानमा पर्न जान्छ। त्यसरी आलयविज्ञानमा वासना पर्न गएपछि क्रमैसँग अष्टविज्ञानका समूह परिणत हुँदै जाने क्रममा पाँच इन्द्रिय विज्ञानको परावृत्तिलाई नै कृत्यानुष्ठान भनिन्छ। यस प्रकार बुद्धको सर्वदर्शी ज्ञान, सर्वज्ञ ज्ञान, सर्वत्रग ज्ञान जस्ता ज्ञानहरूको उदय हुन्छ।

घ. फल अर्थात् बुद्धत्व प्राप्त हुने नय

सद्धर्ममोक्षचिन्तामणिरत्नालङ्कारमा बताइए अनुसार

फल सम्यक्सम्बुद्धको काय हो।

सङ्क्षेपमा हाम्रो भ्रान्ति कस्तो हुन्छ भन्ने कुरालाई यसरी बुझ्न सकिन्छ। अहिले अष्टविज्ञानको प्रतिभासलाई लिएर हामी भ्रमित भएर बसिराखेका छौं। हो, भ्रान्तिलाई यसरी नै बुझ्नु पर्छ। अष्टविज्ञानको समूह समाधि भावनाको कारणले गर्दा पञ्चविध ज्ञानमा परिणत हुन्छ। पञ्चविध ज्ञानमा परिणत हुने बेलामा बुद्धत्व लाभ हुन्छ। त्यसकारण भ्रान्तिको परिप्रेक्षमा कुरा गर्दा त्यो अष्टविज्ञानको समूह हो भने अभ्रान्त ज्ञानमा परिणत हुने बेलामा त्यो पञ्चविध ज्ञान हो। पञ्चविध ज्ञान

त्यसरी उदय भएर बुद्धको काय प्राप्त हुन्छ । त्यतिखेर हासिल हुने अन्तिम वा परम फललाई सम्बुद्धत्व भनिन्छ ।

त्यसो हुने भएकोले बुद्धत्व लाभ हुने बेलामा अष्टविज्ञानका दोष पक्षका रूपमा सम्पूर्ण भ्रान्तिको प्रहाण हुन्छ र गुण पक्षका रूपमा पञ्च ज्ञान सम्पूर्ण रूपमा व्याप्त हुन्छन् वा परिपूर्ण हुन्छन् । त्यसैले गर्दा नै त्यो अवस्थालाई बुद्धत्व भनेर सम्बोधन गरिन्छ ।

यहाँ सम्बुद्धमा सम्को अर्थ परिपूर्णता हो । सबै र सम्पूर्ण गुणहरूले परिपूर्ण भएको, वा एउटा गुण पनि नछुटेको र सम्यक् तवरले व्याप्त भएको अवस्थालाई त्यसले अर्थ्याउँछ । तिब्बती शब्द जोग्पे साङ्ग्येलाई संस्कृतमा बुद्ध भनिन्छ जसलाई सबैतिरबाट सम्पूर्ण, परिनिष्पन्न वा सम्यक् रूपमा परिपूर्णताका रूपमा बुझ्नु पर्छ ।

#### ड. समुदाचार निर्विकल्प सत्त्वार्थक्रियाका नय

त्यसो भए त्यस्तो बुद्धत्व प्राप्त भएपछि त्यसको अनुशंसा (लाभ) चाहि के होला त ? बुद्धको पद पाइसकेपछिको अवस्थामा कुनै पनि कार्य नगरी अकर्मण्य जस्तो भएर वा त्यसमा लिप्त भएर बसिँदैन । त्यसको विषयमा सद्धर्ममोक्षचिन्तामणिरत्नालङ्कारमा यसरी बताइएको छ :

*निर्विकल्प समुदाचारका रूपमा सत्त्वार्थ क्रिया गरिन्छ ।*

त्यतिखेर ठुलै कार्य सिद्ध गरिन्छ । त्यो कस्तो हो ? यसलाई यसरी बुझ्न सकिन्छ । पञ्चज्ञान पूरै प्राप्त भएको बेला विनेयजन सत्त्वहरूको जस्तोसुकै दुःख र जस्तासुकै कठिनाइहरूलाई पनि जस्ताको तस्तै रूपमा जानिन्छ (संस्कृतः यथाभूतम् प्रजानाति) । त्यति मात्र नभएर दुःख भोगिरहेका सत्त्वहरूलाई सद्धर्ममा स्थापित गर्ने, दुःखहरूबाट

उनीहरूलाई उद्धार गर्ने र उनीहरूका क्लेशहरूलाई नाश गर्ने उपायका बारेमा सम्पूर्ण रूपमा र स्पष्ट रूपमा विज्ञ होइन्छ । त्यसले गर्दा नै बुद्धको समुदाचार चर्या र कार्य जिम्मेवारी धेरै नै हुन्छन् ।

कार्यसम्पादनका जिम्मेवारी धेरै भएको बेला त्यो कार्यसिद्धिको मूल केमा भेटिन्छ ? बुद्धको ज्ञान वा बुद्धको गुण त्यसमा भेटिन्छ जसलाई धर्मकाय भनिन्छ । बुद्धको धर्मकाय भनेको सम्पूर्ण समुदाचारको मूल जस्तै नै हुन्छ र निर्माणकायका सम्पूर्ण गुणहरूको स्रोत भएर रहेको हुन्छ ।

धर्मकाय तिब्बती शब्द ‘छ्योक्पिय कु’ को संस्कृत मूल हो । त्यसकारण, त्यो बुद्धका सबै धर्महरूको स्रोत जस्तै हो भनी बुझ्नुपर्छ । अतः धर्मकायलाई मूल धर्मधातु ज्ञानकै रूपमा पनि बुझ्दा हुन्छ । त्यसैले, धर्मधातु ज्ञान भनेको धर्मकाय, धर्मताको यथास्थिति दर्शी ज्ञान, सबै चर्याको उद्गम, सबै गुणहरूको स्रोत जस्तै हुन् । त्यस प्रकारको धर्मकायमा निर्भर भएर नै पञ्चज्ञानमार्फत हुने हरेक कार्यमा एकातिर आलयविज्ञानको परावृत्तिसँगै धर्मधातुज्ञान प्रभास्वरसहित उदय हुन्छ । धर्मता शून्यता तथा धर्मी प्रतिभासहरू अमिश्रित रूपमा स्पष्टै देखापर्छन् । ती नै आदर्श ज्ञान हुन् । त्यस्तै क्लिष्ट मनको परावृत्तिसँगै सबै सत्त्वहरूलाई समान रूपमा महाकरुणाले हेरिने ज्ञान समता ज्ञान हो । यी दुई ज्ञानहरूमा आश्रित भएर बुद्धको सम्भोगकायको प्रादुर्भाव हुन्छ ।

सम्भोगकायलाई महायानका धर्महरूमा सम्पूर्ण रूपमा आनन्द लिएर सम्भोग सम्पत्ति प्राप्त गर्ने अर्थमा बुझ्न सकिन्छ । त्यसप्रकार आफ्नो तर्फबाट सम्पूर्ण गुणहरू परिपूर्ण रूपमा प्राप्त भएको अवस्था हुन्छ भने त्यो अवस्थामा रहेर परार्थक्रियाबाट आफू सम्भोग वा आनन्दको स्थितिमा पुगिन्छ । सारा विनेयजनहरूलाई विशिष्ट फल

प्राप्त गर्ने र विशिष्ट लाभ प्राप्त गर्ने अवस्थामा पुन्याइन्छ । त्यस कार्यबाट बुद्ध स्वयं पनि एकदमै आनन्दित, अत्यन्तै प्रसन्न हुनुको साथै विपुल उत्साहले युक्त पनि हुन्छन् ।

पुनश्च, बुद्ध सम्भोगकाय (बत्तीस) लक्षण र (अस्सी) अनुव्यञ्जन<sup>३</sup>ले सुशोभित हुन्छन् । कर्मशुद्धि भूमिमा रहेका विनेयजन बोधिसत्त्वले यो कायलाई दर्शन गर्छन् । सो कायले नित्य र अविच्छिन्न रूपमा धर्मचक्र प्रवर्तन गरेर महायान सद्धर्मको सदा उपदेश दिइरहन्छ । त्यो उपदेशमा आश्रित भएर बोधिसत्त्व महासत्त्वहरूले परम वा अन्तिम फल अर्थात् सम्बुद्ध पद लाभ गर्दछन् । जसले गर्दा बुद्ध भइसकेपछि स्वयं पनि एकदमै आनन्दित, अत्यन्तै प्रसन्न हुनुको साथै विपुल उत्साहले युक्त हुने भएर यसलाई सम्भोग काय भनिन्छ । त्यस्तो विशिष्ट सम्भोगकायलाई कर्मशुद्धि नभएका विनेयजनहरूले दर्शन गर्न सक्दैनन् । शुद्ध सम्भोगकायको रूप देखाइएपनि शुद्ध भइनसकेका सत्त्वहरूले त्यो रूपलाई देख्न नसक्ने भएको हुँदा अशुद्ध विनेयजनहरू (विनीत गरिनुपर्ने प्राणीहरू) सबैको अर्थसिद्धिका लागि जुन विविध निर्मित कायका रूपहरू देखाइन्छ ती रूपहरूलाई नै निर्माणकाय भनिन्छ ।

त्यसो भए बुद्ध निर्माणकाय कुन ज्ञानले गर्दा प्रादुर्भाव हुन्छ त ? प्रतिवेक्षणा ज्ञान र कृत्यानुष्ठान ज्ञानले गर्दा प्रादुर्भाव हुन्छ । हो, बुद्धका यी दुई ज्ञानको स्वरूपले गर्दा निर्माणकाय प्रादुर्भाव हुन्छ । त्यसकारण, कृत्यानुष्ठान ज्ञानले गर्दा सम्पूर्ण सत्त्वार्थ क्रिया अनाभोग रूपमा (मिहिनेत नै नगरिकनै) सिद्ध भइरहन्छ भने प्रतिवेक्षणा ज्ञानले गर्दा हरेक विनेयजनका आ-आफ्नै धातु, इन्द्रिय र अधिमुक्ति (अभिरुचि) रहेको कुरा स्पष्ट ज्ञात हुन्छ । त्यो पनि कसरी हुन्छ भन्ने प्रश्नको जवाफमा यस्तो भन्न सकिन्छ । अशुद्ध विनेयजनहरूसँग शुद्ध विनेयजनहरूको जस्तो विशिष्ट प्रज्ञा हुँदैन । अशुद्ध विनेयजनहरूको



धातु र इन्द्रिय अनेक र भिन्नाभिन्नै हुन्छन्। कोही कोही मूक जस्तै बुद्धिविवेकहीन हुन्छन्। कोही असाध्यै चलाख भएर अति तीक्ष्ण बुद्धिका बाठा हुन्छन्। त्यसरी नै कोही कोही अत्यन्तै धूर्त हुन्छन्। कोही कोही तीक्ष्ण बुद्धि नभएपनि सोझा र सीधासादा हुन्छन्। अझ कोही कोही त महाश्रद्धावान्, महामैत्रीवान् र महाकरुणावान् पनि हुन्छन्। त्यस्तै कोही कोहीमा ठुलो द्वेष र ठुलो राग हुन्छन्। यसरी विनेयजनहरू विभिन्न र अनेक प्रकारका हुन्छन्।

त्यसो भएको कारणले गर्दा प्रतिवेक्षणा ज्ञानद्वारा अशुद्ध विनेयजनहरूका हरेक धातु, इन्द्रिय, विचार र अधिमुक्तिको बारेमा जानेर कृत्यानुष्ठान ज्ञानद्वारा हरेकका धातु, इन्द्रिय तथा अधिमुक्ति अनुरूप धर्मदेशना गरिन्छ। यस प्रकार धर्मदेशना गरेर विनेयजनहरूको अर्थ सिद्ध (उद्धार) गरिन्छ। यसले गर्दा नै बुद्धको निर्माणकायको समुदाचार चर्या सत्त्वहरूको लागि अविच्छिन्न रूपमा तदारुकताकासाथ सदा सम्पादन भइरहन्छ।

यसप्रकार वा यस्तो तरिकाबाट दागपो वा गम्पोपाका चार धर्महरूको सारांशको व्याख्या यही सम्पन्न हुन्छ।

### ३. अन्तमा चार धर्महरूको अभ्यासमा कसरी प्रवेश गर्न सकिन्छ भन्ने बारेमा उपदेश

दागपोका चार धर्महरूको भावनाको व्याख्या भनेको साधारण अनुभूतिमय निर्देशित व्याख्या जस्तो होइन। अनुभूतिमय निर्देशित व्याख्या भएको भए तपाईंले ध्यान गर्ने बेलामा यसरी बस्नुपर्छ, चित्तले यसरी ध्यान गर्नुपर्छ भन्ने कुरा बताउनुपर्ने हुन्थ्यो। त्यसकारण यो अनुभूतिमय निर्देशित व्याख्या जस्तो होइन। तैपनि दागपोका चार धर्महरूबाट बताइएका यी उपदेशहरूलाई राम्रोसँग जान्न र बुझ्न सके शमथ-भावनाको अनुभूतिमय व्याख्याबाट पनि धेरै नै फाइदाहरू लाभ गर्न सकिन्छ।

अतः हामीले ध्यान गर्ने नै हो भने के कस्ता आवश्यकताहरू पूरा हुनुपर्छ ? लाभहरू कस्ता हुन्छन् ? ध्यान गर्ने तरिका कस्तो हो ?, अष्टविज्ञानका समूह कस्ता हुन् ? ती सबैमध्ये पनि अभ्यास नै कसरी गर्नु पर्छ ? अभ्यास गरेर पछि भविष्यमा विज्ञानका समूह ज्ञानमा कसरी परिणत हुँदै जानेछ जसका कारण बुद्ध त्रिकायका समुदाचार चर्याहरू अविच्छिन्न रूपमा सम्पादन भइरहने छन् ? भन्ने यावत विषयमा अहिले नै स्पष्टसँग पहिल्याउन सकेको खण्डमा वा जान्न बुझ्न सकेको खण्डमा पछि भविष्यमा अनुभूतिको भरमा पनि अत्यन्तै स्पष्ट ज्ञान हासिल गर्न सकिन्छ र बोध हासिल गर्न सकिन्छ। त्यसकारणले गर्दा दागपोका चार धर्महरूका विषयमा श्रवण गर्नु र चिन्तन गर्नु अत्यन्तै आवश्यक र महत्त्वपूर्ण छ। त्यसैले यी उपदेशहरूलाई यसरी नै तपाईंहरूको हृदयमा बसाइराख्नका लागि म तपाईंहरूलाई अनुरोध गर्दछु।

केही उत्साही र मिहेनेती व्यक्तिहरूले प्रकट गर्नुभएको प्रेरणादायी सदिच्छाका कारण सन् २००४ अर्थात् सातौं राब्ज्युङ् काष्ठ बाँदर वर्षमा संयुक्त राज्य अमेरिकास्थित कर्मा त्रियान धर्मचक्र द्वीप (Karma Triyana Dharmacakra) मा दागपोका चार धर्महरूका बारेमा धर्मनिर्देश गरिएको थियो । सो धर्मनिर्देशको अडियो रेकर्डिङ्ग पनि गरिएको थियो । हाम्रो गोन्पाका साधारण भन्ते मिग्मार छेवाङ् ज्यूले त्यस रिकर्डिङ्गलाई लिपिबद्ध गर्नुभएको थियो । त्यसरी लिपिबद्ध गरेर त्यसको मूल पाठ र परिच्छेद विभाजनलाई मिलाएर अलिकति सम्पादन पनि गरेर तैयार पार्नुभएको यो ग्रन्थ बुद्धशासन र सत्त्वहरूको हित हुने कारण बन्न जाओस् भन्ने प्रणिधानका साथमा । बधिनीद्वारा शरीर दान गरिएको महातीर्थस्थल नमोबुद्ध टाशी याङ्चे गोन्पामा सन् २०२१ साल नोभेम्बर १० का दिन ठांगु टुल्मिङ् द्वारा लिखितम् । मङ्गलम् । मिहिनेत गरेर यसको अभ्यासमा पारङ्गत्व हासिल गर्न सक्नु । भ्रान्तिको बिउलाई छेदन गरेर भट्टारक महारेपा र उहाँको विमोक्ष चर्या समान हुन पुगोस् ।

(स्वामी गम्पोपाद्वारा देशित दागपोका चार धर्महरूको साधारण भाषामा व्याख्याः  
हीनबुद्धिक प्रवेशद्वार नामक यो उपदेश क्याब्जे योङ् जिन् ख्येन्छ्येन् परमपूज्य ठांगु रिन्पोछेज्यू नब्बे वर्षको हुनुभएको उपलक्ष्यमा नाथको समुपस्थितिमा बधिनीद्वारा शरीर दान गरिएको महातीर्थस्थल नमोबुद्ध ठांगु टाशी याङ्चे गोम्पामा सन् २०२२ साल मार्च १० देखि मार्च १२ सम्म दुईटा धर्मदेशनामा निर्देश, आगम र कृपा प्रदान गरिएको थियो । त्यो दुई धर्मदेशना सत्र बिहिवारदेखि शनिवारसम्म भएको थियो ।)

## सन्दर्भग्रन्थ र टिप्पणीहरू

१. वृत्तचरित्तुण (नारो छ्योएदुग) - नारोपाका ६ धर्म वा योग भन्नाले महासिद्ध नारोपाले मिलारेपाको गुरु मार्पा लोचावालाई प्रदान गर्नुभएका योग अभ्यासका उपदेशहरू हुन्। ती उपदेशहरू मार्पा गुरुले पछि तिब्बतमा ल्याउनुभएको थियो अहिले नारोपाका ६ धर्म काग्यु परम्पराको मुख्य अभ्यास बनेको छ। नारोपाका ६ धर्म वा योग यस प्रकार छन् : १) चण्डालि योग (तुम्पो ग्युसर्बो), २) मायादेह योग (ग्यु ल्युयु ग्युसु), ३) स्वप्न योग (मिलाम् खैल्ब), ४) प्रभास्वर योग (होएसल् देङ्गस्य), ५) संक्रमण योग (फोवा र्बोच) र ६) अन्तराभव योग (भार्दो चरदे)। यी ६ योगमध्ये पहिला चार योगहरूलाई मूल उपदेश मानिन्छ।

२. सद्धर्मचिन्तामणिमोक्षरत्नालङ्कार - यो ग्रन्थ दागपो थाग्येन् दृग्यर्बो चरकुव को नेपाली अनुवाद हो। यसको पूरा तिब्बती शीर्षक ७७। क्लेस हेक्लसर्बोचर्बोदेवस्यदेवकेवशुस्यसङ्गचरित्तुणकेस्यदेवकेवर्बोचुचरचर्बोचर्बोकेवकेवशुचर्बोचर्बोसो॥ हो। हेर्नुहोस् : मिलन शाक्य (अ.), आचार्य गम्पोपा विरचित सद्धर्मचिन्तामणिमोक्षरत्नालङ्कार। ललितपुर: नागार्जुन बौद्ध अध्ययन संस्था, २००८। यसको अर्को नेपाली अनुवादका लागि हेर्नुहोस् : उपासक श्री गुह्येश्वरीराज मानन्धर, सद्धर्म चिन्तामणि मोक्ष रत्नालङ्कार, काठमाडौं : नमो बुद्ध बौद्ध धर्म ध्यान तथा शिक्षण केन्द्र, २०१७।

३. मार्गोत्तम रत्नमाला - ल्बस्यसङ्गदेवकेवशुचर्बो

४. ती चार भेदहरू दागपो छ्योए शिह वा दागपोका चार धर्मका चार हरफहरू हुन् जसलाई प्रार्थनाका रूपमा यसरी प्रस्तुत गर्न सकिन्छ।

६. यहाँ “संसारलाई परित्याग गर्नुपर्छ (འཕོང་བ་སྤང་ཐུབ་པ་དགོས་པེད།)” लाई शाब्दिक अर्थमा लिनु हुँदैन। बोलचालको भाषामा जे अर्थ लागे पनि यो वाक्यांशको अर्थ संसार छोड्नु वा मृत्युवरण गर्नु होइन। यसको मुख्य अर्थ संसारका जज्जालहरू, विषयहरू, गतिविधिहरू वा सांसारिक जीवनको आसक्तिलाई परित्याग गरेर धर्म अभ्यासमा लागिपर्नु हो।

अन्तमा पहिलो चीवरका सानो टुक्रालाई पनि आदर गर्नुपर्छ । ५१०/२५६

९. आचार्य शान्तिदेवले आफ्नो ग्रन्थ बोधिचर्यावतारमा दुई प्रकारका बोधिचित्तलाई यसरी परिभाषित गर्नुभएको छ । तद्वोधिचित्तं द्विविधं विज्ञातव्यं समासतः । बोधिप्रणिधिचित्तं च बोधिप्रस्थानमेव च ॥ १५ ॥ गन्तुकामस्य गन्तुश्च यथा भेदः प्रतीयते ॥ १६ ॥ (बोधिचित्तानुशंसा, बोधिचर्यावतार) । अर्थात् सङ्क्षेपमा त्यो बोधिचित्त दुई प्रकारका छन् भनी जान्नुपर्छ । बोधिप्रणिधिचित्तं र बोधिप्रस्थानचित्त । जसरी मान्छेले जाने इच्छा र साँच्चिकै जाने यी दुई बिचको भेदलाई चिन्दछ, त्यसरी नै बुद्धिमान मानिसले क्रमशः यिनीहरूमा भएको भेद चिन्दछ । हेर्नुहोस् : पि. एल. वैद्य, शान्तिदेवविरचितः बोधिचर्यावतारः । प्रज्ञामतिविरचितया पञ्जिकाख्य-व्याख्यया संवलितः । दरभंगा : मिथिला विद्यापीठ, १९६०, पृ. ११-१२ ।

१०. ལམ་དང་ལོ་ལ། (ले धाङ्गपोपा) - साधारणतया: मार्ग अभ्यास सुरुवात गर्ने साधकहरूलाई आदिकर्मिक साधक भनिन्छ। मार्ग पाँच भनेका बोधिसत्त्व मार्ग (लाम डा ལམ་ལྔ་) १. सम्भारमार्ग (छोग् लाम् རྒྱུ་ལམ་), २. प्रयोगमार्ग (ज्योर्लाम རྟོག་ལམ་), ३. दर्शनमार्ग (थोङ्लाम् བཤོད་ལམ་), ४. भावनामार्ग (गोङ्लाम् རྟོག་ལམ་), ५. अशैक्षमार्ग (मिलोब्लाम् མེ་

ज्ञेयत्व) हुन्। सम्भार मार्ग बोधिसत्त्व चर्यामा सुरुवातको मार्ग हो र यसलाई आदिकर्मिक भूमि पनि भनिन्छ। हेर्नुहोस्, नारायण प्रसाद रिजाल, महायानबौद्धादर्श : महायान बुद्धधर्मको सङ्क्षिप्त परिचयात्मक ग्रन्थ, काठमाडौं : व्योम कुसुमा बुद्ध धर्म संघ, २०१५, पृ. ३२५।

११. ཡིད་ལོ་རང་གིས་མི་གསལ་བའི་སྒོ་ནས་འཛོལ་གྱི་ཡོད་རེད། (ह्रि खो न्हाङ् घिय् मि सल्वे गो नेय् जिन् घ्यि योय् रे) - मनले आफ्नो त्यो अस्पष्टताको कारणले नै ग्राह गर्छ। यहाँ अस्पष्टताको अर्थ स्पष्ट देख्न नसक्नु हो। त्यो भनेको भ्रम हो। अर्को शब्दमा भन्ने हो भने त्यो वाक्यलाई मनले भ्रमबाट वा भ्रमको कारण ग्राह गर्छ भनेर अर्थ्याउन सकिन्छ।

१२. ५१ चैतसिक धर्म खेस'सुद'ङ्'वडुङ'गडेण (सेम् ड्युङ् डाब्ब्यु चाच्यिग्) - भोट भाषामा ५१ चैतसिक धर्महरूको सूची यस प्रकार रहेका छन् :

पञ्च सर्वत्रगाः श्रुत'अश्रै'ङ्' वेदना क्ख'व' संज्ञा अदु'खेण चेतना खेस' व' स्पर्शः खेण'व' मनस्कारः षिद'व'डुद'व'व' पञ्च विनियताः सुख'देस' ङ्' छन्दः अदुव'व' अधिमुक्तिः खेस'व' स्मृतिः दुव'व' समाधिः णिद'दे'अङ्क'व' प्रज्ञा खेस'व'व' एकादश कुशलानि दणे'व'व'डुगडेण । श्रद्धा द'व'व' हीः द्द'खेस'व' अपत्राप्यम् खेव'अद'व' अरागः अद'द'क्ख'स'खेद'व' अद्वेषः वे' ङ्'खेद'व' अमोहः ग'णि'खेस'खेद'व' वीर्यम् वडु'व'अशु'स' प्रसन्धिः खेव'सुद'स' अप्रमादः वण'अद'व' उपेक्षा व'द'द'ङ्खेस'व' अविहिंसा ङ्'व'व'अङ्क'व'व' षट् मूलक्लेशाः ङ्'अद'व'डुग । रागः अद'द'क्ख'स' प्रतिघः खेद'व' मानः द'कु'व' अविद्या ख'खेण'व' विचिकित्सा खे'खेस' मिथ्यादृष्टिः खेण'ङ्'व' विंशति उपक्लेशाः अ'अद'व'डुग क्रोधः खे'व' उपनाहः अ'अद'व'अङ्क'व' म्रक्षः अङ्क'व' प्रदासः अङ्क'व' ईर्ष्या क्षण'द'व' मात्सर्यम् खे'ङ्' माया ङ्' शाठ्यम् ग'व' मदः कुण'स'व' विहिंसा ङ्'व'व'अङ्क'व' आहीक्यम् द्द'खेद'व' अनपत्राप्यम्



त्रिष्वङ्गेषु आश्रद्धयम् षडङ्गेषु कौसीद्यम् त्रैलोक्ये प्रमादः षडङ्गेषु  
 मुषितस्मृता षडङ्गेषु असंप्रजन्यम् शेषादङ्गेषु षडङ्गेषु स्त्यानम् त्रैलोक्ये  
 औद्धत्यम् त्रैलोक्ये विक्षेपः षडङ्गेषु चत्वारो अनियताः षडङ्गेषु  
 निद्रा षडङ्गेषु कौकृत्यम् त्रैलोक्ये वितर्कः त्रैलोक्ये विचारः त्रैलोक्येषु  
 असङ्गविरचित अभिधर्मसमुच्चयमा पनि ५१ चैतसिक धर्महरू  
 उल्लेखित छन् ।